प्रतिष्ठा का उच्च सोपान

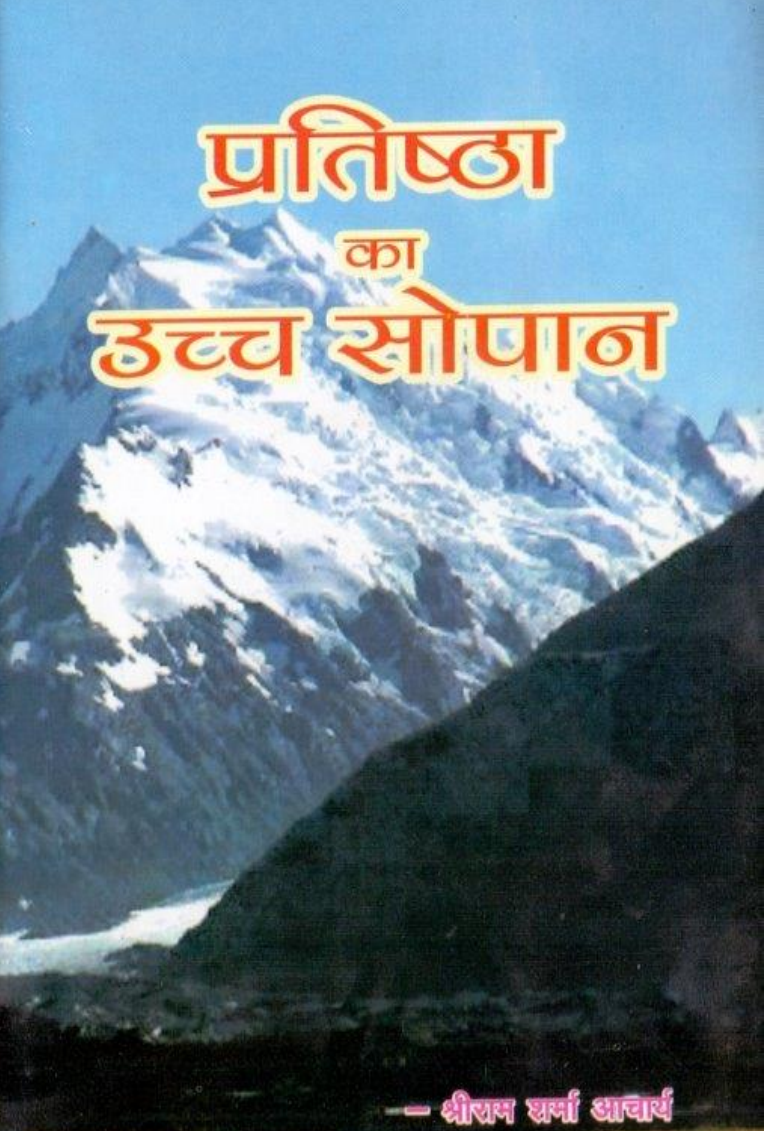

— श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रतिष्ठा का उच्च सोपान

लेखक :
पं०श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं० २५३०२००

पुनर्मुद्रित सन् २०१०

मूल्य : ७.०० रुपये

परिचय

मनुष्य इस सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी है। उसे असाधारण बुद्धि वैभव देकर परमात्मा ने इस संसार में भेजा है। परमात्मा का युवराज मानव प्राणी निस्संदेह महान है, उसकी महानता सर्वोपरि है। इतना प्रतिष्ठित पद मनुष्य को अपने जन्म सिद्ध अधिकार की तरह प्राप्त हुआ है।

पर हम देखते हैं कि बहुत कम लोग उस प्रतिष्ठा की रक्षा कर पाते हैं। अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो न तो अपनी प्रतिष्ठा को भली प्रकार समझते हैं और न उनकी रक्षा कर पाते हैं। धन, शिक्षा, स्वास्थ्य, सौंदर्य, चतुरता जैसी भौतिक वस्तुओं के अभाव में कितने ही मनुष्य अपने को दीन, हीन, नीच एवं प्रतिष्ठा के अनधिकारी समझने लगते हैं। यह भारी भूल है। भौतिक वस्तुओं का भाव, अभाव कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है।

आत्मा के जो आध्यात्मिक गुण हैं, वही वास्तव में प्रतिष्ठा की वस्तु हैं। नैतिकता, सात्विकता, दृढ़ता, ईमानदारी प्रभृति मनुष्यता के प्रधान गुणों की रक्षा करके अपने व्यक्तित्व को खरा सोना साबित करना यही प्रतिष्ठा युक्त जीवन है। इसी मार्ग पर चलने से अपनी और दूसरों की दृष्टि में हमारा सम्मान बढ़ता है। इस सम्मान को प्राप्त करने का मार्ग इस पुस्तक में दिखाया गया है।

-श्रीराम शर्मा आचार्य

पहला पाठ

आत्मसम्मान प्राप्त कीजिए, इज्जतदार जीवन बिताइए !

"तुम कुत्ते हो" ऐसा कडुआ वचन यदि कोई कहे तो जिससे कहा गया है, वह लड़ने मरने को तैयार हो जाएगा। इसे अपनी बेइज्जती समझेगा और बदला लेने पर तुल जाएगा। किसी को 'कुत्ता' कहना भारतीय विचारधारा के अनुसार एक गाली है, जिसे कोई स्वाभिमानी सहन नहीं कर सकता।

क्या आपने कभी विचार किया है कि एक सीधे-साधे निर्दोष जानवर की उपमा दे देने से इतनी चिढ़ क्यों उत्पन्न होती है ? कुत्ते में वैसे कोई खास बुराई नहीं मालुम होती। जो रूखा-सूखा मिल जाता है, उसी में संतोष कर लेता है। रातभर जागकर कड़ी मेहनत की चौकीदारी करता है। किसी को सताता नहीं, मालिक से मुहब्बत करता है, इतने गुण होने के कारण ही लोग उसे खुशी के साथ पालते हैं। यदि अवगुण अधिक होते तो उसे कोई पास भी खड़ा नहीं होने देता। शृगाल, भेड़िया आदि भी कुत्ते जाति के और उसी रंग रूप के हैं, पर वे मनुष्य के लिए लाभदायक नहीं हैं, इसलिए कोई उन्हें पालने का साहस नहीं करता। कुत्ता निस्संदेह कोई उत्तम गुण रखता है, तभी उसे पाला जाता है। वरना व्यापार कुशल मनुष्य उसे कभी अपने घर में स्थान न देता। इतना होने पर भी कोई खास त्रुटि उसके अंदर मालूम पड़ती है, जिसके कारण कुत्ते से अपनी उपमा दिए जाने पर मनुष्य तिलमिला उठता है। घोड़ा, हाथी, शेर, गाय, हिरन, खरगोश आदि भी जानवर हैं, उसी पशु जाति के हैं जिसका कि कुत्ता है। किसी को घोड़ा, हाथी, शेर, गाय, हिरन, खरगोश की उपमा दी जाए तो वह इसे मनोरंजन समझकर हँसी में टाल देगा, परंतु यदि 'कुत्ता' कहा जाए तो आग बबूला हो जाएगा।

जिस दोष के कारण कुत्ते को इतना नीच समझा जाता है कि उसकी तुलना अपने से होना गाली जैसा प्रतीत होता है, वह है आत्म सम्मान का अभाव।

कुत्ता रोटी के टुकड़े के लिए दुम हिलाता है, मालिक के पैर चाटता है, हजारों बार अपमानित होने पर भी कुछ नहीं कहता। मनुष्य की अंतरात्मा कहती है कि 'बेइज्जती सहन करना' सबसे बड़ा असह्य आघात है। उसे कुत्ता सहन कर सकता है, मनुष्य नहीं। कहते हैं कि 'तलवार का घाव भर जाता है, पर अपमान का घाव नहीं भरता"। अपमानित होने की अपेक्षा लोग प्राण दे देना अच्छा समझते हैं। ठोकर खाकर साँप जैसा नाचीज कीड़ा बदला लेता है, चींटी जैसी तुच्छ हस्ती काट खाती है, मनुष्य भी स्वाभिमान की रक्षा के लिए सर्वस्व की बाजी लगा देता है। अपमानित करने वाले को नीचा दिखाने के लिए विवाद करता है, मुकदमा लड़ता है, लाठी चलाता है, खून बहाता है और जो कुछ उससे हो सकता है, सब कुछ करता है। मानव प्रकृति सब कुछ सहन कर सकती है, परंतु अपमान का, बेइज्जती का घूँट गले से नीचे नहीं उतार सकती। मनुष्य इज्जतदार प्राणी है, बेइज्जत होना उसके आध्यात्मिक अधिकार पर कुठाराघात होना है। जिस रुपए, पैसे, घर, जमीन, जायदाद पर अपना अधिकार है, उसे छिनाए जाने पर मनुष्य शक्ति भर विरोध करता है। आत्मा का मूलभूत अधिकार सम्मान है। मछली स्वच्छ पानी में जीना चाहती है। धुँए में हमारा दम घुटता है और हम उस स्थान में रहना पंसद नहीं करते, हमारा अंत:करण अपमानजनक स्थिति को सहन करने के लिए कदापि प्रस्तुत नहीं होता। जिनने अपने अंत:करण को कुचल-कुचल कर मृतप्राय बना डाला है, नित्य पद दलित कर करके अंधा, गूँगा, बहरा बना लिया है, उनकी बात हम नहीं कहते। शेष वे लोग जिनमें जरा-सा भी मनुष्यत्व बाकी है, बेइज्जती को पसंद न करेंगे और अप्रिय परिस्थिति का जितना विरोध कर सकेंगे, बच सकने का जितना प्रयत्नकर सकेंगे, करेंगे। यही कारण है कि मनुष्य कुत्ते से अपनी तुलना पसंद नहीं करता। किसी में चाहे कितने गुण क्यों न हों, परंतु यदि वह अपने सम्मान की रक्षा नहीं करता तो घृणित, नीच, पतित और

अधम समझा जाएगा। इस सच्चाई को मनुष्य माँ के गर्भ में सीखकर आता है। गुरु के उपदेश, शास्त्र के आदेश को सुने बिना भी हर एक मनुष्य आत्मगौरव के सत्य सिद्धांत को भली प्रकार जाँचता है। मनुष्यता के अत्यंत आवश्यक एवं सर्वोपरि गुण को जब वह कुत्ते में नहीं देखता तो उसकी तुलना कराके अपनी बेइज्जती नहीं करना चाहता। 'कुत्ता' कहने को गाली समझने का यही कारण है।

आत्मगौरव की महत्ता पहली पुस्तक में प्रकट की जा चुकी है। गौरवशालिनी आत्मा निस्सन्देह सम्मान की पात्र है। सम्मानीय वस्तु को उसके अनुरूप स्थान देना उचित है। भोजन को पवित्र स्थान पर रखते हैं, पूजा की सामिग्री को रखने के लिए शुद्ध स्थान चुना जाता है, गुरुजनों को उच्च आसन देते हैं। कारण यह है कि आदरणीय, उत्तम और प्रतिष्ठित वस्तु को उच्च स्थिति में रखने की आवश्यकता सर्वविदित है। मानव-शरीर में प्रतिष्ठित गौरवशालनी आत्मा को सम्माननीय परिस्थिति में रखने की आवश्यकता से भी हमें परिचित होना चाहिए। जीवन धारण करने की शान इसमें है कि सम्मान के साथ जिया जाए, लोगों की दृष्टि में श्रद्धा और आदर का पक्ष बनकर रहा जाए।

जीवन को सम्माननीय स्थिति में रखना सर्वोपरि सुखद, अवस्था है, क्योंकि इसमें सुस्वादु और पौष्टिक, आध्यात्मिक खुराक प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। सात्विक, पुष्टिकर आहार ठीक रीति से यदि प्राप्त होता जाए तो शरीर की बल वृद्धि होती है, स्फूर्ति आती है, अंग सुदृढ़ होते हैं, जीवनी शक्ति बढ़ती है और तेज बढ़ने लगता है। इसी प्रकार यदि आत्मसम्मान का सात्विक पोषण पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता रहे तो मानसिक स्वास्थ्य की उन्नति होती है, बुद्धि बढ़ती है, सद्गुण विकसित होते हैं। कार्य-शक्ति उन्नति करती है और बड़ी-बड़ी दुर्गम बाधाओं को पार करता हुआ वह सफलता के उन्नत शिखर पर तीव्र गति से बढ़ता जाता है।

आपने देखा होगा कि आव-हवा में ऐसे तत्त्व होते हैं, जिनका स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। किन्हीं स्थानों की जलवायु ऐसी स्वास्थ्यकर होती है कि बीमार आदमी अच्छे हो जाते हैं और अच्छे की तंदुरुस्ती बढ़ती है। किन्हीं स्थानों की जलवायु में ऐसे

तत्त्व होते हैं कि वहाँ रहने से जीवनी शक्ति घटती है और बीमार पड़ जाने की आशंका बनी रहती है। समुद्र तटों पर तथा पहाड़ों पर कुछ समय के लिए बड़े लोग वायु सेवनार्थ जाया करते हैं ताकि उनका स्वास्थ्य सुधर जाए। जहाँ नमी और सील रहती है, वहाँ की तराइयों में अक्सर ज्वर, जूड़ी, कै-दस्त की बीमारियाँ फैला करती हैं। एक पंजाबी और एक बंगाली को पास-पास खड़ा करके यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है कि जलवायु के अंतर का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

मोटी दृष्टि से देखा जाए तो स्वास्थ्यप्रद और हानिकर स्थानों के पानी का रंग रूप तथा स्वाद एक ही तरह का मालूम पड़ता है। इसी प्रकार साँस लेने वाली हवा भी एक ही तरह की जान पड़ती है, मामूली परीक्षा करने वाला उस अंतर को नहीं जान सकता। जवान से चखकर पानी का फर्क मालूम नहीं किया जा सकता और न नाक से सूँघकर हवा का अंतर प्रकट होता है। साधारण बुद्धि उस फर्क को जानने में प्राय: असमर्थ ही रहती है। तो भी वह अंतर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विवेक पूर्वक अन्य साधनों से परीक्षा करने पर वह अंतर समझ में आ जाता है और अंतत: यह मान लेना पड़ता है कि उन स्थानों की जलवायु में कुछ ऐसे तत्त्व अदृश्य रूप से मिले हुए हैं जो तंदुरुस्ती पर बड़ा भारी प्रभाव डालते हैं, अदृश्य और अगम्य होने पर भी उन तत्त्वों का होना इतना सत्य है, जितना कि दिखाई पड़ने वाले प्रकट पदार्थों का होना।

आत्मसम्मान और आत्मतिरस्कार भी ऐसे ही दो परस्पर विरोधी भाव हैं, जिनका मानसिक स्वास्थ्य पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। लोगों के हृदय में से जब किसी के लिए श्रद्धा, आदर-भावना, मित्र-दृष्टि, मंगल-कामना, आशीर्वाणी उठती है तो वह उच्चकोटि के सात्त्विक एवं आनंदमय तत्त्वों से भरपूर होती है। यह सद्भावनाएँ बिजली की लहरों की तरह आकाश के ईथर तत्त्व में प्रवाहित होती हुई उसी आदमी के पास जा पहुँचती हैं, जिसके लिए उनका जन्म हुआ था। बंदूक की गोली निशाने पर लगती है, छोड़ा हुआ तीर अपने लक्ष पर पहुँचता है। गोली और तीर तो निशाना चूक सकते हैं परंतु श्राप और वरदान की, तिरष्कार और सम्मान की, भलाई और

बुराई की भावनाएँ कभी नहीं चूकतीं। जिसके लिए वे उत्पन्न हुई हैं, उसके पास निर्बाध गति से जा पहुँचती हैं। यही वह आहार है जिसके ऊपर आत्मिक स्वास्थ्य घटता बढ़ता है। किसान खेत में बीज बोता है, समय पर फसल कटती है और उसी अन्न से वह अपना पेट भरता है। गेहूँ बोया है तो गेहूँ खाता है, मक्का बोई है तो मक्का पर निर्वाह करता है। मनुष्य संसार रूपी खेत में कर्त्तव्य कर्मों का बीज बोता है और उस व्यवहार के कारण जो श्राप वरदान प्राप्त होते हैं, उसी आहार से आत्मिक भूख बुझती है। यदि दूसरों के साथ बुराई की गई है, तो वह मन ही मन तुम्हारे प्रति घृणा उगा लेगा। श्राप देगा, दुःखी होगा और तिरस्कार के भाव उत्पन्न करेगा। यह घृणा, श्राप, दुःख, तिरस्कार मिलकर जब सामने आवेंगे और अपनी कमाई हुई इस फसल पर ही आत्मिक भूख बुझाने को विवश होना पड़ेगा, तब यह तामसी अखाद्य और विषैला अदृश्य आहार वैसा ही प्रभाव करेगा जैसा कि तराइयों का जलवायु हानिकर असर करता है। धुएँ से भरे हुए स्थान पर सुखपूर्वक नहीं रहा जा सकता, इस प्रकार यदि चारों ओर से उड़-उड़ कर श्राप तिरष्कार की भावनाएँ आती रहें तो उस अनिष्टकर वातावरण में सांस लेते ही एक दिन आत्मिक स्वास्थ्य नष्ट होकर मानसिक रोगों की भरमार हो जाएगी।

अशांति, बेचैनी, झुंझलाहट, चिड़चिड़ाहट, उदासी, निराशा, क्षोभ, असंतोष, ग्लानि, चिंता, भय, आशंका यह सब 'तिरस्कार' नामक मानसिक रोग के लक्षण हैं। जिसने दूसरों के साथ अनुचित व्यवहार किए हैं, दूसरे के हृदयों में अपने लिए घृणा उपजाई है और संबंधित लोगों के मन में तिरस्कार का पात्र बना हुआ है, वह कभी शांत चित्त न रह सकेगा और मानसिक स्वस्थता के द्वारा मिलने वाले आनंद का उपभोग कर सकेगा। उसे उपरोक्त मानसिक विक्षोभ सदैव पीड़ित किए रहेंगे और एक क्षण के लिए भी संतोष की साँस न लेने देंगे। रोगी कभी कराहता है, कभी चिल्लाता है, कभी हड़फूटन बताता है, कभी-कभी सिर दर्द से बेचैन होता है, उसे न रात को चैन पड़ता है, न दिन को। इसी प्रकार तिरष्कारपूर्ण दुर्भावों के रोग जिस पर हर घड़ी आक्रमण कर रहे हैं, वह मानसिक रोगी बड़ी दुखदायी एवं दयनीय

स्थिति में निर्वाह करता है। भले ही उसके पास ढेर की ढेर धन-दौलत जमा हो, भले ही शानदार महल, बढ़िया वस्त्र, स्वादिष्ट भोजन का उपभोग करता हो, परंतु सचमुच देखा जाए तो वह एक गरीब मजदूर से भी बुरा जीवन व्यतीत करता है। जो शांतिदायक नींद गरीब मजदूर सोता है, वह उस रोगी और अमीर को नसीब नहीं हो सकती। शरीर का रोगी होना जीवन का अभिशाप है। जिसने अपना मानसिक स्वास्थ्य नष्ट कर डाला समझिए कि उसने अमृत को नाली में बहाकर बरवाद कर दिया।

दूसरों के मन में यदि आपके लिए आदर है, सम्मान है, सद्भाव है तो वे ऐसी शीतल, आनंदमयी विद्युतधारा अदृश्य रूप से प्रवाहित करेंगे, जो आप तक पहुँचते-पहुँचते ऐसी स्वास्थ्यप्रद बन जाएगी, जैसी समुद्रतट एवं पर्वतीय प्रदेशों की जलवायु। जिसने किसी से अनुचित व्यवहार नहीं किया, ठगा नहीं, अनिष्ट नहीं किया, धोखा नहीं दिया, वह कभी दुःखी, उदास और असंतुष्ट दिखाई न देगा, क्योंकि उसका अंतःकरण जानता है कि मैंने अखाद्य नहीं खाया है, अकर्म नहीं किया है, अधर्म नहीं फैलाया है, अनर्थ नहीं बढ़ाया है। मन से, वचन से, कर्म से जिसने दूसरों का हितचाहा है, स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को प्रधानता दी है। नम्रता, उदारता, प्रेम, भलमनसाहत, ईमानदारी का व्यवहार करके संबंधित लोगों को संतुष्ट रखा है, वह सच्चा सम्मान का पात्र है। अपनी दृष्टि में जैसा कि वह वास्तव में है कुछ लोग भी वैसा ही समझेंगे जैसा कि वह वास्तव में है। कुछ लोग कुछ समय के लिए भ्रम में रह सकते हैं, पर अंत में सच्चाई प्रकट होती ही है, भला आदमी सदैव भला रहेगा। उसे अपने आपसे और दूसरों से सच्चा सम्मान प्राप्त होगा, सम्मानपूर्ण वातावरण उसके मानसिक स्वास्थ्य की पुष्टि करेगा। प्रसन्नता, संतोष, शांति, स्थिरता, आनंद से उसका चित्त उमंगें लेता रहेगा। यह जीवन ही उसके लिए स्वर्ग होगा, भले ही वह धन दौलत की दृष्टि से गरीब बना रहे।

महात्मा इमरसन कहा करते थे कि अपमान पूर्वक हजार वर्ष जीने की अपेक्षा सम्मान के साथ एक घड़ी भर जीना अच्छा है, सचमुच जिंदगी का आनंद गौरव के साथ, सम्मान के साथ, स्वाभिमान

के साथ जीने में है। इस बात को भली प्रकार समझ लीजिए कि यदि आपके अंत:करण में सजीवता मौजूद है, तो वह आत्मसम्मान की प्राप्ति के लिए लालायित रहेगा। इज्जतदार जिंदगी बशर करना चाहेगा और कमियों को किसी प्रकार बरदाशत किया जा सकता है पर जागृत हृदय इज्जत का अभाव सहन नहीं कर सकता है। यह भूख आध्यात्मिक है, स्वाभाविक है, ईश्वरप्रदत्त है। पेट की भूख बुझाने के लिए हम उद्योग करते हैं, आत्मा की भूख बुझाने के लिए, सम्मान, संपादन करने का प्रयत्न करना भी कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य को पालन करके ही हम आत्मिक बेचैनी से छुटकारा पाकर तृप्ति लाभ कर सकते हैं।

दूसरा पाठ

ईमानदार, खरे और भलेमानस बनिए !

इस जमाने में चापलूसी और कायरता बढ़ गई है। खुशामदी लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए उसकी प्रशंसा के पुल बाँध देते हैं, जिससे मतलब निकालना होता है। कायर लोग डरते हैं, खरी बात मुँह सामने कहने में उनकी नानी मरती है। प्रभावशाली, दवंग, अमीर या बलवान के सामने उसकी खरी आलोचना करते हुए कायरों का दिल धड़कने लगता है, पैर काँपने लगते हैं, इसलिए वे अपनी खैर इसी में समझते हैं कि चुप रहें और समय को टाल दें। तीसरे लोग घोर स्वार्थी दरजे के होते हैं, खुद उनके ऊपर कुछ बीते तो भले ही चें-में करें, पर यदि उनके पड़ोसी, मित्र या भाई पर कुछ अन्याय होता हो तो 'कौन झगड़े में पड़े' या 'हमें अपने मतलब से मतलब' कहकर चुप हो रहते हैं। इस जमाने में उपरोक्त तीन तरह के लोगों की अधिकता है।

जो बुराई का सेहरा अपने सिर ओढ़ने तैयार हों, झगड़े से न डरते हों, सताए हुए लोगों का निस्वार्थ भाव से पक्ष लेते हों, अनुचित काम करने वाले की खरी आलोचना करने का जिनमें साहस हो, ऐसे वीर पुरुषों का प्राय: अभाव ही हो गया। चापलूसी, कायरता और खुदगरजी की अतिशय वृद्धि हो जाने के कारण अनुचित काम

करने वालों को समालोचना या विरोध का बहुत कम सामना करना पड़ता है। यदि एक आदमी ने कुछ कहा सुना भी तो अन्याय करने वाले के दस गुंडे उठ खड़े होते हैं और उसका मुँह बंद कर देते हैं।

यह ठीक है कि अनुचित काम करने वाले बेईमान लोग अपना काम मजे में चलाते रहते हैं। उन्हें विरोध का बहुत थोड़ा सामना करना पड़ता है और पैसे के बल पर बहुत से सहायक मिल जाते हैं। इन सब बातों को रोज आँखों के सामने हम देखते हैं तो भी यह स्पष्ट है कि वह बेईमान आदमी किसी की दृष्टि में इज्जतदार नहीं बन सका। चापलूस अपना मतलब निकालने के लिए तारीफ करता है, कायर डर के मारे कुछ नहीं कहता, खुदगरज को अंधा अपाहिज समझिए, उसे अपने सिवाय और कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कसाई के कुत्ते रोटी के टुकड़े लिए पक्ष लेते हैं, चोर-चोर मौसेरे भाई इसलिए अन्यायी की हिमायत लेते हैं कि कल मेरी हिमायत लेकर बदला चुका देगा। यह सब क्रम चलता है, परंतु इनका दिल टटोला जाए तो सबके मन में घृणा ही विराज रही होगी। मतलब की गुटबंदी भले ही बनी रहे, पर भीतर ही भीतर दिल फटे रहते हैं। हर आदमी विवेक और विचार रखता है, ईश्वर ने सबको बुद्धि दी है, सब जानते हैं कि यह अनर्थ हो रहा है, अनर्थ-समर्थक का भी अंत:करण उससे घृणा करता है। काम को कोई स्वार्थवश करता भले रहे, पर उसका हृदय उसे बुरा ही समझेगा और बुरे कर्म से घृणा करने की जो आध्यात्मिक प्रवृत्ति है, वह अपना काम करती रहेगी। यही कारण है कि बदमाशों के गिरोह अधिक दिन नहीं चलते, उनमें भीतरी फूट पड़ जाती है और वह गुट छिन्न-भिन्न हो जाता है। उद्देश्य, सच्चाई और कर्त्तव्य के लिए काम करने वाले साथी एक दूसरे के लिए प्राण निछावर कर सकते हैं, अपने सर्वस्व की बाजी लगा सकते हैं, परंतु बदमाशों का गुट जरा आघात में तितर-बितर हो जाता है।

अनुचित आचरण करने वाले के संगी-साथी, कुटुंबी, स्त्री, पुत्र तक मन में उससे घृणा करते हैं। जिसको सताया गया है, ठगा गया है, वह तो अत्यंत तिरस्कार के भाव उगलेगा ही, इस तरह अदृश्य लोक में चारों ओर से तिरस्कार, अनादर और दुर्भाव उसके

ऊपर उड़-उड़ कर जमा हो जाते हैं। जैसे रेतीले प्रदेश की आँधी में पड़कर वस्त्र रहित व्यक्ति घबराता है। आँख, नाक, मुँह, में धूल के अंबार प्रबल वेग से धँसकर बेचेन करते हैं, वैसे ही चारों ओर से उड़-उड़कर आने वाली दुर्भावनाएँ उसे अधिक व्यथित करती हैं और अर्धविक्षिप्त की तरह वह परेशानी में डूबता उतराता रहता है। बेईमानी गुप्त रूप से की जाए तो भी अपनी खुद की आत्मा धिक्कारने को मौजूद है, करने वाले का नाम भले ही छिपा रहे, पर बेईमानी का कार्य अधिक समय तक छिपा नहीं रहता। सताए हुए व्यक्ति का दिमाग भले ही यह न जान पावे कि किसने मेरे साथ अनर्थ किया है, पर उसके मन में से जो हाय, घृणा, श्राप वाणी निकलती है, वह लक्षवेधी वाण की तरह सीधी उसी के ऊपर टूट पड़ती है, जिसने प्रकट रूप से या गुप्त रूप से वह कुकृत्य किया था। तात्पर्य यह है कितनी भी होशियारी से, चालाकी से, सफाई से, गुप्त रूप से बेईमानी की जाए, वह करने वाले के लिए अदृश्य रूप से घातक और दुःखदायी परिणाम लाती है। अधर्मी मनुष्य चाहे वह कितना ही चतुर क्यों न हो, आत्मसम्मान का स्वर्गीय तृप्तिदायक आहार प्राप्त नहीं कर सकता। बेईमानी से जमा की हुई संपत्ति ऐसी है, जैसी मृगी की कस्तूरी। माना कि कस्तूरी बहुमूल्य है, पर जिस दिन मृग के शरीर में पड़ती है, उसी दिन से उस गरीब का सोना छूट जाता है, विश्राम बंद हो जाता है। भूख प्यास की चिंता छोड़कर हर घड़ी अनिश्चित गति से चारों ओर भागता फिरता है। यह कस्तूरी मृग के किसी काम नहीं आती, उलटा शिकारियों द्वारा वध करा देने का कारण बन जाती है। वह संपदा किस काम की जो कस्तूरी की तरह दुःखदायी हो।

आत्मसम्मान को प्राप्त करने और उसे सुरक्षित रखने का एक ही मार्ग है—वह यह कि 'ईमानदारी' को जीवन की सर्वोपरि नीति बना लिया जाए। आप जो भी काम करें, उसमें सच्चाई की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए। लोगों को जैसा विश्वास दिलाते हैं, उस विश्वास की रक्षा कीजिए। विश्वासघात, दगाबाजी, वचन पलटना, कुछ कहना और कुछ करना मानवता का सबसे बड़ा पातक है। आजकल वचन पलटना एक फैशन सा बनता जा रहा

है, इसे हल्के दरजे का पाप समझा जाता है, पर वस्तुतः अपने वचन का पालन न करना, जो विश्वास दिलाया है उसे पूरा न करना बहुत ही भयानक, आत्मघाती, सामाजिक पाप है। धर्म आचरण की 'अ आ, इ, ई,' वचन-पालन से आरंभ होती है। यह प्रथम सीढ़ी है, जिस पर पैर रखकर ही कोई मनुष्य धर्म की ओर, आध्यात्मिकता की ओर, उच्चता की ओर, ईश्वर की ओर बढ़ सकता है।

अपने बारे में जवान से कहकर या बिना जवान से कहकर किसी अन्य प्रकार जो कुछ दूसरों को विश्वास दिलाते हैं, शक्ति भर पूरा करने का प्रयत्न कीजिए, यह मनुष्यता का प्रथम लक्षण है। जिसमें यह गुण नहीं वह सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं हो सकता है। कहा जा सकता कि उसे वह सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता, जो कि एक मनुष्य को होना चाहिए। आप जो भी कारोबार करें, उसमें ईमानदारी का अधिक से अधिक अंश रखें, इससे अपने सम्मान की वृद्धि होगी और कारोबार खूब चलेगा। उन कमीनी अकल के लोगों को क्या कहा जाए, जो भाट सा मुँह फाड़कर यह कह दिया करते हैं कि व्यापार में बेईमानी बिना काम नहीं चलता, ईमानदारी से रहने में गुजारा नहीं हो सकता। असल में ऐसा कहने वाले ओछी बुद्धि के, नासमझ और विवेक बुद्धि से सर्वथा रहित होते हैं। भला बेईमानी भी व्यापार का कोई जरिया है? यह तो कुकर्म है, जिसके लिए दफा ४२० के अनुसार सात साल तक के लिए जेलखाने की चक्की पीसनी पड़ती है, सरे बाजार जूते पड़ते हैं और इतनी बदनामी मिलती है जिसके कारण कोई भला आदमी उसे अपने पास नहीं बैठने देता। जो कारोबार ऐसी ओछी नीति के ऊपर खड़ा हुआ है, वह बालू के महल की तरह बहुत शीघ्र ढह जाता है।

जो समझते हैं कि हमने बेईमानी से पैसा कमाया है, वे गलत समझते हैं। असल में उन्होंने ईमानदारी की ओट लेकर अनुचित लाभ उठाया होता है। कोई व्यक्ति साफ-साफ यह घोषणा कर दे कि 'बेईमान हूँ और धोखेबाजी का करोबार करता हूँ' तब फिर अपने व्यापार में लाभ करके दिखाए तो यह समझा जा सकता है

कि हाँ, बेईमानी भी कोई लाभदायक नीति है। यदि ईमानदारी की आड़ लेकर, बार-बार सच्चाई की दुहाई देकर अनुचित रूप से कुछ कमा लिया तो वह ईमानदारी को ही निचोड़ लेना हुआ। यह क्रम तभी तक चलता रह सकता है, जब तक कि पर्दाफाश नहीं होता। जिस दिन यह प्रकट हो जाएगा कि भलमनसाहत की आड़ में बदमाशी हो रही है तो उस कालनेमी माया का अंत समझिए।

आप टुच्चे मत बनिए, ओछे मत बनिए, कमीने मत बनिए। प्रतिष्ठित हूजिए और अपने लिए प्रतिष्ठा की भावनाएँ फैलने दीजिए। यह सब होना ईमानदारी पर निर्भर है। आप छोटा काम करते हैं कुछ हर्ज नहीं। कम पूँजी का, कम लाभ का, अधिक परिश्रम का, गरीबी सूचक काम-काज करने में कोई बुराई नहीं है। जो भी काम आपके हाथ में है उसी में अपना गौरव प्रकट होने दीजिए। यदि आप दुकानदार हैं, तो पूरा तौलिए, नियत कीमत रखिए, जो चीज जैसी है उसे वैसी ही कहकर बेचिए। इन तीन नियमों पर अपने काम को अवलंब कर दीजिए। मत डरिए कि ऐसा करने से हानि होगी। हम कहते हैं कि कुछ ही दिनों में आपका काम आशातीत उन्नति करने लगेगा। कम तोलकर या कीमत ठहराने में अपना या ग्राहक का बहुत समय बरबाद करके जो जल्दबाजी की जाती है, उसे ग्राहक भांप लेता है, बालक और पागल भले ही उस चालाकी को न समझ पावें, समझदार आदमी के मन में उस जल्दबाजी के कारण संदेह अवश्य उत्पन्न होता है। भले ही वह किसी वजह से मुँह से कुछ न कहे पर भीतर ही भीतर गुनगुनाने लगेगा। उस बार तो माल ले जाएगा पर दूसरी बार फिर आने में बहुत हिच-हिच करेगा। ग्राहक मुँह से चुप है। दुकानदार के प्रति ग्राहक के मन में संदेह उत्पन्न हुआ तो समझ लीजिए कि उसके दुबारा आने की तीन चौथाई आशा चली गई। इसी प्रकार मोल भाव करने में यदि बहुत मगजपच्ची की गई है, पहली बार मांगे गए दामों को घटाया गया है, तो उस समय भले ही वह ग्राहक पट जाए, पर मन में यही धकपक करता रहेगा कि कहीं इसमें भी अधिक दाम तो नहीं चले गए हैं? ठग तो नहीं लिया गया हूँ? क्योंकि बार-बार दामों का घटाया जाना यह साबित करता है कि

दुकानदार झूठा और ठग है। ग्राहक सोचता है कि यदि इसकी बात पर विश्वास करके पहली बार माँगे हुए दाम दे दिए होते तो मैं बुरी तरह ठग गया होता। भले ही वह बाजार भाव से कुछ सस्ते दाम पर माल खरीद ले चला हो, पर संदेह यही करता रहेगा कि कहीं इस झूठे आदमी ने इसमें भी ठग तो नहीं लिया? ऐसे संकल्प-विकल्प, शंका-संदेह लेकर जो ग्राहक गया है, उसके दुबारा आने की आशा कौन कर सकता है? लूट खसोट करना तो चोर डाकुओं का काम है, दुकानदार उस नीति को अपना कर अपने करोबार को विस्तृत और दृढ़ नहीं बना सकता है।

कुछ बताकर कुछ चीज देना एक बड़ा ही लुच्चापन है, जिससे सारी प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाती है। दूध में पानी, घी में वेजीटेबिल, अनाज में कंकड़, आटे में मिट्टी मिलाकर देना आजकल खूब चलता है, असली कहकर नकली और खराब चीजें बेची जाती हैं। खाद्य पदाथों और औषधियों तक की प्रामाणिकता नष्ट हो गई है। मनमाने दाम वसूल करना और नकली चीजें देना यह बहुत बड़ी धोखा धड़ी है, अच्छी चीज को ऊँचे दाम पर बेचना चाहिए, यह अपडर झूँठा है कि अच्छी चीज मँहगे दाम पर न बिकेगी। यदि यह प्रमाणित किया जा सके, कि वस्तु असली है तो ग्राहक उसको कुछ अधिक पैसे देकर भी खरीद सकता है। विदेशों में जिन व्यापारियों ने व्यापार का असली मर्म समझा है, उन्होंने पूरा तोलने, एक दाम रखने और जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही बताने की अपनी नीति बनाई है और अपने कारोबार को सुविस्तृत करके पर्याप्त लाभ उठाया है। सदियों की पराधीनता ने हमारे चरित्र बल को नष्ट कर डाला है, तदनुसार हमारे करोबार झूठे, नकली, दगा फरेब से भरे हुए होने लगे हैं। लुच्चेपन से न तो बड़े पैमाने पर लाभ ही उठाया जा सकता है और न प्रतिष्ठा ही प्राप्त की जा सकती है। व्यापार में धोखेबाज़ी की नीति बहुत ही बुरी नीति है। इस क्षेत्र में कायरों और कमीने स्वभाव के लोगों के घुस पड़ने के कारण भारतीय उद्योग धंधे, व्यापार नष्ट हो गए। इस देश में प्रचुर परिमाण में शहद उत्पन्न होता है, पर शहद की जरूरत है, वह यूरोप और अमेरिका से आया हुआ शहद कैमिस्ट की दुकान से जाकर खरीदेगा।

घी इस देश में पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न होता है, पर अविश्वास के कारण लोग रूखा-सूखा खाना या वेजिटेबिल प्रयोग करना पसंद करते हैं। हमारे व्यापारिक चरित्र का यह कैसा शर्मनाक पतन है।

यही बात श्रमजीवी क्षेत्र में चल रही है। दैनिक वेतन ठहराकर मजदूर बुलाइए तो आठ घंटे में पाँच घंटे के बराबर काम करेंगे। ठेके पर काम दे दीजिए तो चार दिन का काम एक दिन में बड़ी जल्दीबाजी से करके रख देंगे। अपने लिए अनुचित लाभ कमाने की खातिर दूसरे का काम बिगाड़कर रख देने में उन्हें जरा भी परवा न होगी। आधे मन से, आधे परिश्रम से, आधी जिम्मेदारी से, काम करने वाले श्रमजीवी अधिक दिखाई पड़ते हैं। ऐसे लोगों के लिए काम करने वालों के मन में क्या आदर हो सकता है? उन्हें काहिल कामचोर, निकम्मा और हरामी समझा जाता है। लेने को तो वे अपनी मजदूरी के पैसे ले ही जाते हैं पर काम करने वालों के आदर और सहयोग से वंचित रह जाते हैं। मानव प्राणी में दैवी अंश प्रचुर मात्रा में भरा हुआ है, यदि कमजोर आर्थिक स्थिति वाले श्रमजीवी, अपनी सच्चाई के द्वारा काम करने वालों के मन में अपने लिए थोड़ा सा स्थान प्राप्त करलें तो उनका प्रेम और सहयोग भी प्राप्त कर सकते हैं। उस प्रेम तथा सहयोग के आधार पर अधिक लाभदायक स्थिति के अवसर भी प्राप्त हो ही सकते हैं। हमें ऐसे अनेक उदाहरण मालूम हैं, जिनमें अपनी ईमानदारी से मजदूर ने काम कराने वाले के दिल में स्थान प्राप्त किया और फिर उनके सहयोग से उन्नत अवस्था में पहुँच गए। अदूरदर्शी मजदूर इन बातों को नहीं समझता, वह हरामखोरी से मेहनत बचाकर, चोरी से पैसे बचाकर, गैर जिम्मेदारी से बद्धि का खरच बचाकर कुछ आसानी और आराम अनुभव करता है, पर वह नहीं जानता कि इसके बदले में कितनी हानि कर रहा हूँ।

धर्म प्रचारक, उपदेशक, ब्राह्मण, लेखक, कवि, नेता, साधु-संत, वकील, डॉक्टर, शासक आदि बुद्धिजीवी श्रेणी के लोगों का उत्तरदायित्व सबसे महान है। मस्तिष्क की शक्ति से मनुष्य का जीवन सुव्यवस्थित रूप से चलता है और बुद्धिजीवियों की प्रेरणा से समाज की व्यवस्था बनती है, पागल और विक्षिप्त मनुष्य का

जीवन क्रम बेसिलसिले हो जाता है, इसी प्रकार जिस देश के बुद्धि जीवी लोग अपनी बुद्धि का प्रयोग ईमानदारी के साथ करना छोड़ देते हैं, वह देश-जाति सब प्रकार दीन-हीन और नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, योरोप, अमेरिका आदि देशों के निवासियों की व्यक्तिगत विशेषताएँ ऐसी नहीं हैं कि वे इतने ऐशोआराम भोगते। उन देशों के बुद्धिजीवी लोगों ने अपने मस्तिष्कों का उपयोग अपने निजी स्वार्थ तक ही सीमित न रक्खा, बल्कि उनकी शक्ति से जो काम हो सकते थे, उसका लाभ अपने देशवासियों को उदारतापूर्वक बाँट दिया। मुगल सम्राट की लड़की की चिकित्सा करके अच्छा कर देने के उपरांत अंग्रेज अधिकारी ने यह इनाम मांगा कि मेरे देश से आने वाले माल पर चुंगी न ली जाए। वह चाहता तो अपने निज के लिए धन-दौलत माँगकर स्वयं मालदार बन सकता था, पर उसने ऐसा नहीं किया। वैज्ञानिकों ने जीवन भर खोज करके बड़े-बड़े अन्वेषण किए हैं, आविष्कारकों को प्रकट किया है, महत्त्वपूर्ण यंत्र बनाए हैं, यदि वे लोग चाहते तो उन खोजों के आधार पर खुद मालोमाल बन सकते थे, पर क्या उन्होंने ऐसा किया? उन लोगों ने अपने संपूर्ण बुद्धि कौशल का लाभ अपने देशवासियों को उठाने दिया, तदनुसार वे देश लक्ष्मी के, आरोग्य के, विद्या के, ऐश आराम के भंडार बने हुए हैं, जल-थल और आकाश के एक बड़े भाग पर शासन कर रहे हैं।

बुद्धि तत्त्व दैवी विभूतियों में उच्चकोटि का वरदान है। इसका उपयोग अधिक से अधिक ईमानदारी से होना चाहिए। श्रम और व्यापार के दुरुपयोग से जो हानि होती है वह सीमित है, क्योंकि उनका दायरा छोटा और शक्ति स्वल्प है, वह सीमित है। परंतु बुद्धि तो गैस या बारूद की तरह है। सदुपयोग से बलवान शत्रु को आसानी से इसके द्वारा मार भगाया जा सकता है और यदि दुरुपयोग किया जाए तो अपना सर्वनाश होने में भी कुछ देर नहीं लगेगी। नादानी से गैस या बारूद के गोदाम को भड़का दिया जाए तो क्षणभर में विस्फोट उपस्थित हो जाएगा। मस्तिष्क से निकलने वाली बिजली बहुत ही सावधानी और सतर्कता से बरती जानी चाहिए, अन्यथा असंख्य जन-समूह के भाग्य पर

उसका घातक प्रभाव हो सकता है। जो ब्राह्मण आत्मविश्वास की जगह अंधविश्वास नहीं फैलाते हैं, जो वकील न्याय के स्थान पर झूँठी मुकदमेबाजी खड़ी कराते हैं, जो डॉक्टर प्रकृति नियमों पर चलने का उपदेश न देकर दवाओं की गुलामी सिखाते हैं, जो लेखक विकारों को भड़काने वाली निकृष्ट रचनाएँ रचते हैं, जो कवि मातृत्व को अपमानित करने वाले निर्लज्ज गीत गाते हैं, जो प्रचारक कलहकारी प्रचार करते हैं, जो नेता अनुयायियों को उल्लू बनाते हैं, जो साधु-संत योग का सच्चा मर्म प्रकट करने की अपेक्षा अपने को और दूसरों को भ्रम में डालते हैं। जो शासक प्रजा की उन्नति, सुरक्षा करने के स्थान पर लूट-खसोट पर उतर आते हैं, जो पथ-प्रदर्शक अनजानों को गुमराह करते हैं वे अपने बुद्धि व्यवसाय में भयंकर बेईमानी करते हैं। इस बेईमानी के कारण वे कुछ समय के लिए ऐश आराम के साधन इकट्ठे कर सकते हैं, पर जनता जनार्दन के साथ वे ऐसा अन्याय करते हैं जिसकी तुलना और किसी पातक से नहीं हो सकती। बुद्धि का दुरुपयोग करके लोगों को उलटे मार्ग पर भटका देना पहले दरजे का शैतानी कर्म है, ऐसे लोगों के लिए भारतीय धर्मवेत्ताओं ने 'ब्रह्म-राक्षस' शब्द का प्रयोग किया है।

दुनियाँ में प्रमुखतः तीन वर्ण हैं। चौथे वर्ण को हम इसलिए छोड़ देते हैं कि उनकी मनुष्यता अभी बहुत अधूरी है। उन तक पुस्तकों का और उपदेशों का प्रभाव नहीं पहुँच सकता। बुद्धिजीवी-ब्राह्मण, श्रमजीवी-क्षत्रिय, व्यापारजीवी-वैश्य, यह तीनों श्रेणियाँ ही बुद्धि संस्कार युक्त होने के कारण द्विज कहलाती हैं। शूद्र शब्द करीब-करीब पशुत्व का बोधक है। जो लोग विचार, बुद्धि, ज्ञान एवं अंतःकरण की दृष्टि से पशु हैं, उन्हीं के लिए शूद्र शब्द काम में लाया गया है, लोभ और भय ही इनका पथ प्रदर्शन करता है। चूंकि शूद्र लोग अध्यात्म ज्ञान को समझने में असमर्थ हैं, इसलिए उन्हें इसका अनाधिकारी ठहराया गया है। शूद्रों को छोड़कर हमारा हर एक द्विज से अनुरोध है कि वे अपने जीवन व्यवसाय में-बुद्धि, श्रम, व्यापार में ईमानदारी बरतें। अपने व्यवहार को ऐसा रखें जिससे जन-समाज के सामने सिर ऊँचा उठाकर यह कहा जा सके

कि 'मैं मनुष्य हूँ–मैं मनुष्यता को कलंकित नहीं करता–मैं मनुष्यता का गौरव जानता हूँ और उसे तिरष्कृत नहीं करता।'

आत्मसम्मान का राजपथ यही है कि कारोबार में, आचरण में प्रामाणिकता रखिए। बुद्धिजीवी हैं तो अपने ज्ञान का अपने लिए, दूसरों के लिए ऐसा प्रयोग करिए जिससे पथ भ्रष्टता, अनीति, छल, दुराव, कपट, शोषण, भ्रम, अज्ञान और अशांति की वृद्धि न हो सके। बुद्धि को पवित्र तत्त्व समझिए और उसे धर्म के साथ ही प्रयुक्त होने दीजिए। वेश्या अपने शरीर के एक भाग का अनुचित उपयोग होने देती है इसलिए उसे तिरष्कृत एवं घृणित ठहराया जाता है, बुद्धि को व्यभिचारिणी होने देना वेश्यावृत्ति से अनेक गुना घृणित एवं पापपूर्ण है। सच्चाई से अंत:करण की साक्षी देकर जो बात आप जिस प्रकार ठीक समझते हैं, उसे उसी प्रकार प्रकट करिए। इससे आपकी आमदनी कदापि कम नहीं होगी। अनीति का पैसा चोरों के घर, वकीलों के घर, डॉक्टरों के घर, वेश्याओं के घर चला जाता है। मुफ्तखोर उसे उड़ाते हैं, अपने लिए वह क्लेश ही छोड़ता है। धर्मपूर्वक यदि कम पैसा कमाया गया है तो विश्वास रखिए वह आपके काम आवेगा, आपके आनंद की वृद्धि का साधन होगा।

यदि आप श्रमजीवी हैं तो खरा काम कीजिए, जितना समय निश्चित है उसमें से एक मिनट भी कम करने का प्रयत्न मत कीजिए, जो काम आपको करने के लिए दिया गया है, उसे बेगार की तरह मत टालिए वरन सारी दिलचस्पी, योग्यता और मेहनत के साथ इस तरह कीजिए मानों अपना निजी काम है, आपकी सुरुचि , कला, बुद्धिमानी और महत्ता का वह कार्य प्रतिबिंब होना चाहिए। धूल पर बने हुए पैरों के निशानों को देखकर यह पहचान लिया जा सकता है कि इस रास्ते कुत्ता गया है या घोड़ा। काम को देखकर यह जान लिया जाता है कि इसका करने वाला किस आचरण का है, उसकी मनोवृत्तियाँ मनुष्यतायुक्त हैं या कमीनी। खराब या कम काम करने पर भी मजदूरी तो संभवत: आपको मिल जाएगी, पर जो काम आपने किया है, वह चिरकाल तक एक विश्वसनीय गवाह की तरह खड़ा हुआ दिन–रात यह घोषणा करता रहेगा कि 'मुझे कमीने हाथों से बनाया गया है।' यह बड़ी ही लज्जास्पद और डूब मरने की बात है। माना आपको

उसमें कम मजदूरी मिली है, मालिक का स्वभाव अच्छा नहीं है। यह दोष दूसरों के हैं, इसका दंड आप अपने को क्यों दें? अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोवें? अपने को फूहड़, नालायक या हरामखोर साबित क्यों करें? काम खराब करने से तो आपका पक्ष और भी कमजोर होता है और यह साबित होता है कि ऐसे नालायक को तो और भी कम मजदूरी मिलनी चाहिए थी, इसके साथ तो और भी खराब व्यवहार होना चाहिए था। अपने लिए ऐसी धारणाएँ फैलने देना भला कौन स्वाभिमानी श्रमजीवी पसंद करेगा?

प्रमाणिकता के साथ व्यापार करना एक प्रकार के यज्ञ के समान है। उसमें निजी लाभ भी है और दूसरों का लाभ भी है। व्यापारी को मुनाफा मिल जाता है और ग्राहक को संतोषजनक वस्तु, दोनों ही प्रसन्न रहते हैं और आगे के लिए दोनों का मन मिला रहता है। प्रशंसा और आदर भाव का द्वार खुला रहता है सो अलग। किसी ग्राहक से एक दिन अनुचित लाभ लेकर बहुत सा मुनाफा ले लेने की अपेक्षा व्यापारी को इसमें अधिक लाभ है कि उचित रीति से थोड़ा लाभ ले। अधिक ठगा हुआ ग्राहक एक दो बार से अधिक न आवेगा, किंतु थोड़ा लाभ लेने पर वह बार-बार आवेगा, चिरकाल तक संबंध रखेगा और नए ग्राहक लावेगा। हिसाब लगाकर देख लीजिए, अंततः वही व्यापारी अधिक लाभ में रहेगा, जो थोड़ा मुनाफा लेता है, पूरा तोलकर देता है और कुछ कहकर कुछ वस्तु नहीं भेड़ता।

आप न्याय-परायण बुद्धिजीवी बनिए, आप ईमानदार व्यापारी बनिए, क्योंकि इसी में सब दृष्टि से लाभ रहेगा। पैसे की दृष्टिसे नफे में रहेंगे, समाज में आपको ऊँची निगाह से देखा जाएगा, ख्याति बढ़ेगी, प्रतिष्ठा प्राप्त होगी, झंझटों से बचेंगे और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि आपका अंतःकरण शांति और स्वस्थता अनुभव करेगा। आदर और प्रतिष्ठायुक्त आशीर्वाणी, मलयाचल की शीतल सुंगधित वायु की तरह आपके चारों ओर प्रवाहित होगी। जिसके दिव्य प्रभाव से रोम-रोम में उल्लास भर जावेगा।

प्रतिष्ठा, सम्मान, आदर और इज्जत का जीवन ही जीवन है। आप जो कुछ भी काम करते हैं, उसको ईमानदारी और प्रमाणिकता से

भर दीजिए। खरे बनिए, खरा काम कीजिए, खरी बात कहिए। इससे आपका हृदय हलका रहेगा और निर्भयता अनुभव करेगा। ईमानदार, खरा आदमी, भलामानस यह तीन उपाधि यदि आपको जनता के अंत:स्थल से मिलती हैं तो समझ लीजिए कि आपने जीवन-फल प्राप्त कर लिया, स्वर्ग का राज्य अपनी मुट्ठी में ले लिया।

तीसरा पाठ

आबरू की रक्षा के लिए वीरोचित कार्य का अवलंबन कीजिए!

मूल्यवान वस्तुओं को पास रखने पर उनकी रक्षा की जिम्मेदारी भी उठानी पड़ती है। घर में धन रखा हो तो उसकी हिफाजत के लिए तिजोरी की व्यवस्था करनी पड़ती है। चौकीदार, पहरे वाले रखने पड़ते हैं। चोरों डाकुओं से बचने का उपाय करना पड़ता है, आ पड़े तो उनका मुकाबिला करने के तैयार रहना पड़ता है। यह सब जिम्मेदारी धन के साथ ही हैं, यदि धन न हो तो इनमें से एक भी बात की चिंता नहीं होती। मनुष्य के लिए आत्मगौरव, आत्मसम्मान ऐसी ही धान राशि हैं। उनकी रक्षा के लिए कुछ व्यवस्था करनी पड़ती है, कुछ जिम्मेदारी उठानी होती है। स्वाभिमान से हीन व्यक्ति अपमानजनक स्थिति में पड़ा रह सकता है। पग-पग पर पद दलित और तिरस्कृत होना पसंद कर सकता है। झूठन खा सकता है, रोटी के टुकड़े के लिए कुत्ते की तरह दुम हिला सकता है, पर जिसका आत्मभिमान जीवित है, उससे यह सब किसी प्रकार न हो सकेगा। हलवाइयों की दुकान के आस-पास कुछ कंगले बैठे रहते हैं, खाने वाले ने पत्तल दौने फेंके कि उनसे चिपकी हुई झूठन को चाटने के लिए वे लोग लपके। कभी-कभी तो इसलिए वे आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते हैं। विवाह, मृतभोज आदि की दावतों का समाचार सुनकर कुछ मनुष्य दरवाजे पर आ बैठते हैं और कुछ भोजन माँगने के लिए बुरी तरह दाँत घिसते हैं, दुत्कारे जाते हैं, गालियाँ चखते हैं, तब कुछ पाते हैं अन्यथा खाली हाथों लौट जाते हैं। यह मनुष्यता को कलंकित करने वाली स्थिति है। झूठन खाकर

पेट भरने की अपेक्षा घासपात खाकर रह जाना अच्छा है। सतीत्व बेचकर उदरपूर्ति करने की अपेक्षा उपवास कर लेना अच्छा है।

जिसने मनुष्यता का मूल्य और गौरव नहीं समझा, वह इस प्रकार के कार्यों द्वारा जीवन-निर्वाह करता रहेगा और मन में कुछ ग्लानि न करेगा। ऐसी नौकरी करने वाले हमने देखे है, जो कटु शब्द सुनते रहते हैं, गालियाँ खाते रहते हैं, पिटते रहते हैं, पर उस नौकरी को नहीं छोड़ते, उस नौकरी में कोई बड़ा भारी लाभ हो, सो बात नहीं और नहीं यह बात है कि उन्हें वैसी नौकरी दूसरी जगह न मिलेगी, बल्कि कारण यह है कि उसका दिल इतना कायर और मलीन हो गया है कि प्रतिदिन ठोकरें खाकर भी सोया हुआ स्वाभिमान जागता नहीं। यह उदाहरण हमने छोटे दरजे के लोगों के दिए हैं। ऊँचे दरजे के लोगों में भी ऐसे असंख्य व्यक्ति भरे पड़े हैं, जो सभ्य भाषा में किए अपमानों का हालाहल नीचे उतारते रहते हैं। सभ्य लोगों के बीच में रहने के कारण कुछ थोड़ा स्वाभिमान उनमें होता है। वह अपमान की लात खाकर जरा सी करवट बदलता है, अँगड़ाई लेता है और कुछ क्षण बाद फिर पूर्ववत सो जाता है। गीता में 'आत्म-हनन' इसी को कहा गया है। अपमान और तिरस्कारों की ठोकरें खाते-खाते उनकी आध्यात्मिक भूमिका ऐसी निस्तेज, निर्बल एवं हतवीर्य हो जाती है कि उसमें अन्य उच्च गुणों को धारण करने की क्षमता नहीं रहती। अत्यंत निर्बल और रोगिणी स्त्रियों को गर्भ नहीं रहता और रह भी जाए तो वह स्थिर नहीं रहता, अधूरी अवधि में ही नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार अपमान सहने वालों में या तो अन्य अच्छे गुण आते नहीं, यदि आते हैं तो चंद रोज में ही वे विलीन हो जाते हैं। जो बालक स्कूल में अधिक पिटते हैं, बड़े होकर यदि वे अध्यापक बन जावें तो अपनी कक्षा के बालकों को खूब पीटते हैं। जो बहू घर वालों द्वारा सताई जाती है, वह जब सास बनती है तो अपने बेटे की बहू को खासतौर से सताती हैं, बिना इसके उसे चैन नहीं पड़ता। इसी प्रकार जो लोग अपमानित होते रहते हैं, वे अपने से छोटे लोगों को सताने और अपमानित करने में खूब निपुण हो जाते हैं। जहाँ बदबूदार वस्तुएँ जमा होती रहेंगी, वह स्थान दुर्गंध से भर जाएगा और जिस जगह सुगंधित

पदार्थ जमा होंगे, वहाँ वैसी ही महक उठेगी। अपमान के दूषित तत्त्वों को जो व्यक्ति पीता रहता है, उनमें नीच कोटि की तामसी, पाप पूर्ण आदतों की भरमार हो जाती है। ज्वालामुखी पर्वत के पेट में गंधक भरा होता है, इसलिए वह अग्नि या भस्म ही उगल सकता है, उससे किसी वस्तु के जलने की आशा करना व्यर्थ है। अपमान के घूँट पी-पीकर जिसने अपना पेट भरा है, उसके मन, वचन और कर्म से सदा आसुरी तत्त्व ही निकलते रहेंगे। ऐसा मनुष्य न तो कभी खुद संतोष पा सकता है और न अपने संबंधित व्यक्तियों को खुश रख सकता है।

स्वाभिमानी मनुष्य को यह जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी पड़ेगी कि वह अपमान का कड़वा घूँट पीने से इनकार कर दे। द्रौपदी के अपमान का बदला चुकाने के लिए कुरुक्षेत्र का मैदान खून से लाल कर दिया गया था। भीम ने दुर्योधन की जाँघ को गदा से तोड़कर ही दम लिया था। हमारा तात्पर्य किसी को ऐसे ही भीम कर्म करने के लिए उत्तेजित करने का नहीं वरन यह बताने का है कि अपमान कितना कड़वा घूँट है और उसका प्रतिरोध करने में लोग कितनी बड़ी जोखिम उठाने में नहीं हिचकते। जो आत्मत्याग की इतनी बड़ी जोखिम उठाने को तैयार रहें वे ही आत्मगौरव जैसी बहुमूल्य संपत्ति की रक्षा कर सकते हैं। खजाने के पहरेदारों को डाकुओं से लड़ने के लिए जान की बाजी लगाकर बंदूक पकड़नी होती है। स्वाभिमान के खजाने की रक्षा में भी जोखिम है। जो जोखिम और जिम्मेदारी से डरते हैं, उनके लिए सम्मान को सुरक्षित रखना कठिन है।

आप दूसरों का सम्मान करना सीखिए, इससे आपके सम्मान की रक्षा होगी। नियम है कि दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार करिए जैसा अपने लिए चाहते हैं। किसी को 'तू' कहकर मत पुकारिए। यह असभ्य भाषा का शब्द है, जिसको आध्यात्म मार्ग के पथिक को जल्द अपने शब्दकोश में से निकालकर बाहर कर देना चाहिए। अच्छा हो कि आप आज से अभी से, इस घड़ी से ही 'तू' का उच्चारण भुला देने का प्रयत्न करना आरंभ करदें। नौकरों को, बालकों को, स्त्रियों को, छोटों को, किसी को भी 'तू' कहकर मत

पुकारिए। यह अपमान सूचक शब्द जिसके लिए कहा जाता है, उसके गौरव को गिरा देता है, कम कर देता है। वैसे तो 'आप' शब्द ही सबके लिए ठीक है, पर अधिक से अधिक ढील यह रखी जा सकती है कि 'तुम' शब्द का प्रयोग कर लिया जाए। यह 'तुम' भी मधुर स्वर में हलके ढंग से इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए जिसमें आदर सूचक ध्वनि निकलती हो। कटु शब्द बोलकर अपना और दूसरों का दिल दुखाने से क्या लाभ? जब उसी बात को नरमी के साथ कहा जा सकता है और उसका प्रभाव भी अधिक होता है, तब नाराज होकर अपना खून सुखाने, बढ़ाने और दूसरे को चिढ़ाने की मूर्खता करने से क्या फायदा होता है, हम नहीं समझते। गाली देना और खासकर गंदी, अश्लील गाली देना तो बिलकुल हैवानियत है। माँ, बहिन और बेटियों के प्रति सरे आम बेइज्जति के वचन बोलना यह घोर असभ्यता और निर्लज्जता का चिन्ह है। यदि लड़ना है तो आप लोग सिर फोड़कर लड़लें, पर बहिन बेटियों को बीच में न घसीटें। जिह्वा अन्न खाने और विवेक-बोलने के लिए है। इससे कोई अभक्ष नहीं खाता, उचित है कि इसी श्रेणी के काम 'गंदी गाली देने' को भी उससे न किया जाए।

मधुर बोलने की आदत डालेंगे तो दूसरे लोग आपके साथ भी करीब-करीब उसी तरह पेश आएँगे। कहते हैं कि अपनी इज्जत अपने हाथ है। जब भलमनसाहत, नम्रता, मधुरता और प्रतिष्ठा पूर्ण शब्दावली दूसरों के साथ प्रयोग करेंगे तो विश्वास रखिए, वैसा ही मधुर बरताव आपके साथ भी होगा। यह दुनियाँ दर्पण के समान है, हर एक को अपना ही मुँह सामने खड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। दुनियाँ की वाणी कुए की प्रतिध्वनि के समान है। पक्के कुए की मुंडेर पर खड़े होकर जैसे शब्द बोलेंगे, कुए से वैसे ही शब्द प्रतिध्वनित होकर लौट आवेंगे। जवान से मीठा बोलेंगे तो कान से मीठा सुनेंगे। 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' का सीधा सौदा दुनियाँ की हाट में बिका करता है। इस खेत में अपने बोए बीज अनेक गुने होकर उग आते हैं। यदि आप इस तरह भाषण करते हैं, जो, दूसरों को आदर सूचक प्रतीत हो तो विश्वास रखिए, आप भी अपने लिए वैसा ही व्यवहार पावेंगे, जिसमें आदर-भाव की पर्याप्त मात्रा होगी।

व्यवहार के साथ आचरण का भी संबंध हैं। केवल वाणी नहीं, आचरण में भी नम्रता, सुजनता और शिष्टता का सम्मिश्रण होना चाहिए। यथास्थान बिठाना, स्वागत करना, मिलने की प्रसन्नता प्रकट करना, शिष्टाचार और सभ्यता का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए। हँसी-मजाक का स्वभाव अच्छा है, पर उसमें ऐसी उद्दंडता, उच्छृंखलता न होनी चाहिए, जो दूसरों को अपमानित करे, उनके ऊपर ऐसा प्रभाव ढाले कि मुझे तिरस्कृत किया जा रहा है।

ईमानदारी से चलने और मधुर भाषण एवं शिष्ट व्यवहार के आधार पर आत्मसम्मान का तीन चौथाई प्रश्न हल हो जाता है। जब अपनी ओर से बेईमानी या असभ्य व्यवहार का आरंभ नहीं किया जाता तो संघर्ष के अवसर प्राय: बहुत कम आते हैं। बदले के रूप में जो झगड़े उठ खड़े होते हैं, उनकी मधुर व्यवहार के कारण जड़ ही कट जाती है। कहते हैं कि एक हाथ से ताली नहीं बजती, अपना पक्ष यदि स्वच्छ हो तो विपक्षी की झगड़ालू वृत्ति भी शांत हो जाती है। ईंधन न मिलने पर अग्नि अपने आप बुझ जाती है। इसी प्रकार से लोग यदि बुरे स्वभाव के हों तो भी अपनी सुजनता के कारण उन्हें अनुचित व्यवहार करने का न तो अवसर मिलता है और न साहस होता है। इस प्रकार सत्तर-अस्सी प्रतिशत वे अवसर टाल जाते हैं जिनमें पड़कर मनुष्य प्राय: अपमानित हुआ करता है।

अब एक चौथाई प्रश्न शेष रह जाता है। बीस-तीस प्रतिशत अवसर ऐसे लोगों की ओर से आते हैं, जिनकी वृत्तियाँ अत्यंत क्रूर, शोषक और अन्याय ग्रस्त हो गई हैं। किसी कमीने आदमी को धन, अधिकार, ऊँचा पद, शारीरिक बल, तेज, मस्तिष्क, कोई फायदेमंद काम मिल जाए तो उसका अहंकार अत्यंत विकराल रूप से बढ़ने लगता है। उस बाढ़ में यदि कोई रोकथाम न लगे, नियंत्रण न हो तो कुछ समय में ही वह उतना उग्र हो जाता है कि अपनी समता में किसी को भी नहीं ठहराता। शतरंज के खेल में प्यादा जब फर्जी हो जाता है तो वह टेढ़ा-मेढ़ा चलने लगता है। नीच वृत्तियों के लोग अपनी औकात से अधिक संपदा प्राप्त करलें तो उनके घमंड का ठिकाना नहीं रहता। उस घमंड में उतावले होकर वे शिष्टाचार,

सभ्यता और मनुष्यता तीनों को ही भूल जाते हैं और अज्ञानता के कारण या कभी-कभी बिना कारण भी दूसरों का अपमान करते हैं, क्योंकि उनमें सद्‌गुण तो होते नहीं, जिनके आधार पर सच्चा सम्मान प्राप्त कर सकें। आत्मा की भूख सम्मान प्राप्त करने की होती है। उसे बुझाए बिना चैन नहीं पड़ता, तब वे दूसरों का अपमान करके अपना बड़प्पन प्रकट करना शुरू करते हैं और बढ़ते-बढ़ते इतनेआगे बढ़ जाते हैं कि दूसरों का अपमान करना उनके बाएँ हाथ का खेल हो जाता है। आदमखोर बाघ की दाढ़ में जब आदमी के खून का चस्का लग जाता है तो वह इस फिराक में लगा रहता है कि कहाँ आदमी पाऊँ और कब अपनी लपक बुझाऊँ। ठीक इसी प्रकार की आदत उन कमीनों को पड़ जाती है, मौका पाते हैं, बिना उचित कारण दूसरों पर बरस पड़ते हैं और गुंडेपन से उसकी इज्जत आबरू खराब करते हैं। ऐसे लोगों पर साधारण विनय, सभ्यता, भलमनसाहत का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। या तो उन्हें पिघलाने के लिए असाधारण धैर्य वाला चिर तपस्वी आध्यात्मिक योगी चाहिए या फिर लात का जबाब घूंसे से देकर उन्हें झुकाया जा सकता है।

इस प्रकार के उद्‌दंड और अहंकारी व्यक्ति आतंक फैलाकर उसका अधिक लाभ भी उठाते हैं। गरीब और निर्बल लोगों का शोषण करना-यह एक बे पूँजी का बहुत ही सरल तथा लाभदायक व्यवसाय साबित होता है। वे अपना आतंक जमाते हैं, अपने जैसे लोगों की गिरोहबंदी करते हैं और उसे डरा धमकाकर साधारण श्रेणी के असंगठित लोंगों को लूटते-खसोटते हैं, हर स्थान पर ऐसे लोग मिल सकते हैं, जो आतंक के बल पर पेट भरते और संपत्ति जमा करते हैं। लड़ाई, झगड़े मार-पीट, गाली-गलौज, चोरी-चारी करना-कराना इनके बाएँ हाथ का खेल होता है, अपने पड़ोसियों को चैन से न बैठने देने में, उलझाए रखने में ही इनका चौधरीपन चल सकता है, अतएव अपनी उपयोगिता कायम रखने के लिए नाना प्रकार के उपद्रवों की सृष्टि करते रहते हैं।

तीसरे प्रकार के वे कपटी और मायावी लोग हैं जो धर्म की भलमनसाहत की, विद्वता की, बुजुर्गी की आड़ में छिपकर शिकार खेलते हैं। सभ्यता उनमें होती नहीं इसलिए अपनी असभ्य एवं

काली भावनाओं को धर्म, ईश्वर-भक्ति, बुजुर्गी आदि का चोला पहनकर लोगों की आँखों में धूल झोंकते हैं और ऐसे विचार एवं कार्यों में प्रोत्साहन देते हैं, जिससे उनके व्यक्तिगत अहंकार की पूर्ति हो। भले ही उनकी क्रिया से किसी का कितना ही अनिष्ट क्यों न होता हो, किसी को कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़ता हो। बाहर से दया धर्म की चादर ओढ़कर अंदर घोर पाषाण हृदय छिपाए रहते हैं, वह पाखंडी लोग बुरे से बुरे कर्म कर और करा सकते हैं, पर होने चाहिए वे परदे की आड़ में। यदि कोई अपनी अंतर्वाणी को स्पष्ट रूप से प्रकट करे और वह इनकी कपटी चादर में छिपे हुए सिद्धांतों के विपरीत पड़ते हों तो बस समझ लीजिए- अनर्थ उपस्थित कर देंगे। ऐसी चीख-पुकार मचावेंगे मानो सारी पृथ्वी की धर्म धुरी इन्हीं की छाती पर रखी हुई है और यदि ये उसे सँभाले न रहेंगे तो दुनियाँ से धर्म का लोप ही हो जाएगा।

ऐसे लोग मानवीय स्वाभिमान के लिए एक चुनौती के समान हैं। इनकी प्रवृत्तियों को सहन कर लेने का अर्थ है, उनके कार्य में सहयोग देना। यह लोग साधारण तर्क, दलील, प्रमाण और प्रार्थना से पिघलते नहीं। रिश्वत देकर या तो इन्हें शांत किया जा सकता है या फिर दंड देकर। उनका अन्याय सहन कर लेने या रिश्वत देकर शांत करने से कुछ समय के लिए काम भले ही चल जाए पर कुछ समय बाद दूसरे रूप में या दूसरों पर उनका असुरत्व प्रकट होगा और फिर पूर्ववत यंत्रणाओं की सृष्टि होने लगेगी। पूर्ववत ही नहीं पहले से भी अधिक तीव्र गति से, क्योंकि प्रत्येक सफलता के साथ उनकी हिम्मत और निरंकुशता बढ़ती जाती है। अन्याय और निरंकुश अहंकार के सामने आत्मसमर्पण कर देना बेइज्जती का दूसरा रूप है। बेईमानी का आचरण करके जिस प्रकार मनुष्य अपने स्वाभिमान को खो देता है, उसी प्रकार अत्याचारी के आगे नाक रगड़ने से भी आत्मगौरव नष्ट होता है। आपके आत्म-समर्पण का परिणाम यह होगा कि अपना स्वाभिमान, साहस, तेज, नष्ट हो जाएगा, बदनामी फैलेगी, लोग कायर और नपुंसक समझेंगे, आगे के लिए दिल कमजोर हो जाएगा, निराशा, गिरावट और काहिली की हलकी सी सतह ऊपर छाने लगेगी, अपनी पराजय को देखकर दूसरे अनेक लोग भी उसी तरह डर जाएंगे, जो मानस-भूमिका में थोड़े ही समय पूर्व जन्मे थे और

अपरिपक्व थे। अन्याय के आगे माथा टेक देने का परिणाम करीब-करीब उतना ही भयंकर होता है जितना कि स्वयं अन्याय करने का। सच तो यह है कि अन्याय सहने वाला अन्याय करने वाले से भी अधिक पापी है। कहते हैं कि—'जालिम का बाप बुजदिल' होता है। यदि अन्याय सहने के लिए लोग तैयार नहीं, उसका विरोध प्रतिरोध करने को तत्पर हो जावें तो निस्संदेह जुल्मों का अंत हो सकता है।

हो सकता है कि आपको योग्य, सुसंपन्न, बुद्धिमान देखकर व्यक्तिगत रूप से वे अधर्मी लोग कुछ रियायत करदें और संघर्ष की संभावना देखकर बचकर निकल जायें अथवा सहयोग प्राप्त करने के लिए कुछ विशेष कृपा प्रदर्शित करें। उनकी इन चालों में फँस जाने का अर्थ अप्रत्यक्ष रूप से अपने आत्मगौरव को खोना है। ईश्वर ने आपको बल, बुद्धि, विद्या तथा योग्यता देते हुए यह जिम्मेदारी भी दी है कि अपने से अल्पशक्ति वालों की इन योग्यताओं द्वारा रक्षा की जाए। केवल अपने व्यक्तिगत लाभ तक ही दृष्टि को सीमित रखना, मनुष्यता को कलंकित करना है। खजूर का वह पेड़ किस काम का जो खुद ही आकाश में चढ़ा रहता है, पर उसकी छाया में बैठने का लाभ किसी को प्राप्त नहीं होता।

अन्यायी और अत्याचारी की करतूतें मनुष्यता के नाम एक खुली चुनौती हैं जिसे वीर पुरुषों को स्वीकार करना ही चाहिए। अपने ऊपर न सही, दूसरे निर्दोष व्यक्तियों के ऊपर यदि अन्याय होता है तो उसका प्रतिरोध करना आवश्यक है। बुराई से लड़ना हर स्वाभिमानी का फर्ज है। आप अन्याय के साथ बहादुर सेनापति की तरह जूझ पड़िए। बुद्धिमानी से हाथ पैर बचाकर पैंतरा बदलकर युद्ध करिए और एक योद्धा जिन कुशलताओं से काम लेता है, आप इनका प्रयोग कर सफलता को सरल बनाइए। साथ ही इसके लिए भी तैयार रहिए कि उस युद्ध में यदि जूझ जाना पड़े, सर्वस्व नष्ट हो जाए, वीरगति प्राप्त हो तो उसे हँसकर स्वीकार किया जाए। योद्धा के लिए विजय और वीरगति एक समान ही आनंददायी हैं, क्योंकि दोनों में ही एक समान आत्मगौरव की रक्षा होती है। विजयी वीरों के नाम इतिहास में गौरव के साथ लिखे हुए हैं, पर पराजित वीरों के नाम उनसे भी अधिक आदर के साथ स्वर्णाक्षरों में लिखे हुए हैं। ईसामसीह दुष्टों के

आगे हार गया, वीर हकीकतराय, बंदा वैरागी, राणाप्रताप, पराजित कहे जा सकते हैं, परंतु जिनकी आँखें हों वह देखें कि वह पराजय, विजय से अधिक मूल्यवान है। उन महापुरुषों का आत्मगौरव इन पराजयों ने और भी चमका दिया। क्या वह पराजय विजय से कम महत्त्वपूर्ण है? अन्याय के विरुद्ध लड़ते रहना वास्तव में एक बड़ी ही सम्माननीय वीरोचित जीवन प्रणाली है, जिसे हर मनुष्य को अपने जीवन का एक अंग बना लेना चाहिए। संसार में अन्याय और जुल्मों की सृष्टि ईश्वर ने इसलिए की है कि उनसे सुयोग्य मनुष्य अधिक उन्नति करें, अधिक आनंद पावें। अखाड़े में भारी-भारी पत्थर और मुग्दर इसलिए रखे जाते हैं कि इनसे जूझ-जूझ कर पहलवान लोग अधिक बलवान बनें। आपके आस-पास जो अन्याय, अत्याचार फैले पड़े हैं उनसे लड़ पड़िए। जूझिए, प्रतिरोध कीजिए, संघर्ष करिए और मिटाने के लिए हर संभव एवं उचित प्रयत्न को काम में लाइए कदाचित आप अपने को अकेला एवं निर्बल अनुभव करते हों और परिस्थितिवश उस समय संघर्ष करने की अवस्था में न हों तो इतना तो अवश्य करिए कि अंत:करण को पराजित मत होने दीजिए। आत्म-समर्पण मत करिए। अन्याय के विरुद्ध घृणा राखिए, विरोध रखिए और लड़ने का अवसर तलाश करते रहिए, जब जितने अंशों में, जुल्म से विरोध करना संभव हो, करने में मत चूकिए। शारीरिक न सही तो मानसिक युद्ध अवश्य जारी रखिए। इस प्रकार एक योद्धा की तरह जीवन रूपी कर्मभूमि में अन्याय के विरुद्ध सदैव संघर्ष करते रहिए। यह आपके लिए प्रतिष्ठा की बात होगी। इस मार्ग में जो कष्ट प्रहार, आघात और घाव सहने पड़ेंगे, वह अपमान सूचक नहीं वरन स्वर्ण पदकों के समान सुशोभित होंगे। इस संघर्ष में खाई-हुई प्रत्येक चोट आपके आत्मसम्मान को अधिक ऊँचा उठाने वाली सिद्ध होगी।

आत्मसम्मान की प्राप्ति और रक्षा के तीन उपाय हैं—(१) अपने विचार और व्यवसाय ईमानदारी से भरा रखिए। (२) अपने भाषण और व्यवहार को सादा और सभ्यता पूर्ण रखिए। (३) जुल्म और ज्यादती के खिलाफ धर्म युद्ध जारी रखिए। इस त्रिवेणी में स्नान करते हुए आप सच्चे आनंद का लाभ करेंगे और मानव जीवन की सबसे बड़ी आत्मसम्मान की प्राप्ति और रक्षा में समर्थ हो सकेंगे।

चौथा पाठ

बाहरी रहन-सहन भी आत्मसम्मान के उपयुक्त बनाइए !

ऊसर भूमि में बीज नहीं जमता, क्योंकि उसमें उत्पादक शक्ति का अभाव होता है। चाहे कैसा ही बढ़िया बीज डालिए परिश्रमपूर्वक सिंचाई कीजिए, पर उस भूमि में हरे-भरे पल्लवित पौधे लहलहावेंगे, यह आशा करना व्यर्थ है। अच्छे पौधे उसी भूमि में उगेंगे, जिसके गर्भ में उर्बरा शक्ति विद्यमान होगी। इसलिए अच्छा किसान जब बढ़िया फसल की बात सोचता है तो सबसे पहले खेतों की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाने का प्रयत्न करता है। अच्छी जमीन लेता है, खाद डालता है, जुताई करता है। जब उसे विश्वास होता है कि खेत में काफी उर्वराशक्ति हो गई, तब उसमें बीज डालता है और अच्छी फसल काटता है। ऊसर एवं हीन-वीर्य खेत में बीज बो देने पर भला किसान के हाथ क्या लगेगा? बेचारे का बीज और परिश्रम मुफ्त में ही चला जाएगा। इसी प्रकार जीवन को उन्नत, प्रभावशाली, संपत्तिवान, बलिष्ठ, विवेकयुक्त बनाने से पूर्व इस बात की आवश्यकता है कि अंत:करण में आत्मसम्मान प्राप्त करने की उत्कंठा प्रचंड गति से हिलोरें मार रही हो। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। जरूरत पड़ने पर बुद्धि उपायों की खोज करती है, जिन्हें जरूरतें नहीं, इच्छा आकांक्षा नहीं, उन्हें उपाय ढूँढ़ने का परिश्रम भी गवारा नहीं होता। जीवन को अनेक दिशाओं में उन्नत एवं समृद्ध बनाने वाली उत्पादन शक्ति का नाम है—'आत्मसम्मान की आकांक्षा'। जो अपने को प्रतिष्ठित, बड़ा आदमी, महापुरुष, अधिकारी बनाना चाहता है, वह उसके लिए उपाय ढूँढ़ेगा और यह सच्चाई सूर्य की तरह स्पष्ट है—ढूँढ़ने वाले को मिलता है। जिसने खोजा है, उसने पाया है।

विद्वता, धन, पदवी, अधिकार, कला-कौशल, उत्तम स्वास्थ्य, ऐश्वर्य, नेतृत्व आदि प्रतिष्ठास्पद पदार्थ प्राप्त करने के लिए परिश्रम, प्रयत्न और धैर्य की आवश्यकता है, वह यों ही उत्पन्न नहीं हो जाता।

तामसी वृत्तियाँ सदैव आलस्य और अकर्मण्यता की ओर झुकती हैं, इसलिए अक्सर ऐसे विचार भी उठ सकते हैं कि जो है उसी में संतुष्ट रहो, कोशिश करने में क्या फायदा? भाग्य का होगा तो घर बैठे मिल जाएगा। अर्कमण्यता के साथ आलस्य आता है, बुद्धि और शरीर से कड़ी मेहनत लेना तामसी वृत्तियाँ नापसंद करती हैं। वे चाहती हैं कि बिना मेहनत किए काम चल जाए, आराम से पड़ा रहा जाए। हम देखते हैं कि इन्हीं तामसी वृत्तियों में अधिकांश व्यक्तियों का अधिकांश जीवन ग्रसित रहता है। तदनुसार वे अपने अंदर छिपे पड़े हुए शक्तियों के अतुलित भंडार को यों ही निकम्मा पड़ा रहने देते हैं और अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में जीवन-क्रम चलाते हुए आयु को पूर्ण कर जाते हैं। अच्छी परिस्थितियाँ और सुविधाएँ मिलने पर भी कोई विशेष उन्नति नहीं हो सकती, यदि मनुष्य के अंदर महत्त्वाकांक्षा न हो। वे ही लोग ऊँचे उठ सकते हैं, सफल जीवन हो सकते हैं, जो उस प्रकार की इच्छा आकांक्षा करते हैं। यह इच्छाएँ जब प्रबल होती हैं तो शरीर और मस्तिष्क की शक्तियों को उसी प्रकार जबरदस्ती खींच ले जाती हैं, जैसे तेज चलने वाला आतुर घोड़ा जिस रथ में जुतता है, उसे सरपट दौड़ा ले जाता है। अपना गौरव बढ़ाने की, सम्मान प्राप्त करने की, अपनी महत्ता प्रकट करने की महत्वाकांक्षा जब जोर मारती है तो योग्यताएँ और शक्तियाँ अपना-अपना काम पूरा करने में जुट जाती हैं और जो कार्य पर्वत के समान दुर्गम दिखाई पड़ते हैं, वे बड़ी आसानी से पूरे हो जाते हैं। संचित योग्यताएँ तो अपना काम करती ही हैं, साथ ही आवश्यकता के दबाव के कारण सोई हुई अविकसित शक्तियाँ भी जागृत होकर क्रियाशील बनती जाती हैं। मानवीय शक्तियों की संख्या और मात्रा में दिन-दिन उन्नति होती जाती है। जो व्यक्ति पहले मंद बुद्धि, दुर्बल शरीर, आलसी, हतवीर्य दिखाई पड़ते थे; वे ही आत्मसम्मान की आकांक्षा को तीव्र करके जब कर्त्तव्य-पथ पर चल पड़े तो इतने तीव्र बुद्धि, स्वस्थ, कर्मनिष्ठ और तेजस्वी सिद्ध हुए, जिसकी आशा उनके आरंभिक जीवन में बिलकुल नहीं होती थी।

मानव-तत्त्व की खोज करने वाले आचार्य इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संपूर्ण प्रकार की उन्नतियाँ आत्मसम्मान की महत्वाकांक्षा के अभिन्न सहचर हैं। जब आत्मा किसी प्यास में

बेचैन होकर सचमुच यह पुकार करती है कि 'मुझे अमुक वस्तु चाहिए' तो उसकी सारी सेविकाएँ प्रमाद छोड़कर उठखड़ी होती हैं और अपनी रानी की मनोवांछा पूरी करने में जाँ-फिसानी से जुट जाती हैं। सेविकाएँ तभी तक आलस्य, प्रमाद हुक्म-अदूली करती हैं, जब तक कि मालकिन की इच्छा और आज्ञा अस्पष्ट, अधूरी होती है, तीव्र इच्छा का पालन भी तीव्र गति से होता है। चाह होने पर राह निकलती है। इच्छा की शक्ति महान है, उस महाशक्ति के लिए इस संसार में कोई भी वस्तु प्राप्त करना असंभव नहीं है। इन्हीं सब बातों पर गंभीर विवेचना करने के उपरांत शास्त्र ने यह उपदेश किया है कि संसार में समृद्धि, सौभाग्य और परलोक में सुख-शांति प्राप्त करने वालों की इच्छा करने वालों को अपने आत्मसम्मान को बढ़ाने और उसकी रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए। आध्यात्मिक गुणों में 'आत्म सम्मान' का स्थान बहुत ऊँचा है, क्योंकि यह प्रेरणाओं का केंद्र है। बिजलीघर का शक्ति-स्रोत नगर की सारी बत्तियों को प्रकाशवान बना देता है। अकर्म करने से रोकता है और सत्कर्मों में प्रवृत्त करता है। अपने चारों ओर ऐसे धर्मयुक्त, सुख, शांतिमय पुनीत वातावरण का निर्माण कर देता है, जिसमें रहकर मनुष्य हर घड़ी यह अनुभव करता है कि मैंने अपने जीवन का सदुपयोग किया, जीवन-फल पाया और भूलोक के अमृत का प्रत्यक्ष रूप से आस्वादन किया।

आत्मसम्मान की प्रारंभिक शिक्षा के लिए एक बहुत पुराना मंत्र है, जो आज की परिस्थितियों में भी ज्यों का त्यों उपयोगी बना हुआ है। वह मंत्र है—'सादा जीवन, उच्च विचार'। प्राचीन समय में बालकपन से लेकर वृद्धावस्था तक इसी ढाँचे में लोगों के जीवन ढले रहते थे। आज बेतरह का जमाना बरत रहा है। जीवन को बनावटी और विचारों को नीच बनाने की लत लोगों को पड़ती जाती है। भ्रमवश वे ऐसा समझते हैं कि हमारी बनावटी चमक-दमक के भुलावे में आकर लोग हमें बड़ा आदमी समझने लगेंगे। वे अपनी औकात से अधिक टीमटाम बनाते हैं। विलायती फैशन की नकल, पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने, बोलने-चालने में करते हैं। वे सोचते हैं कि अंग्रेज लोग हिंदुस्तान के शासक हैं, उन्होंने तरह-तरह के

आविष्कार किए हैं। हिंदुस्तानी लोग उनसे डरते हैं, इसलिए उनकी नकल हम बनावें तो लोग हमें भी आधा अंग्रेज समझकर खौफ खाने लगेंगे। फलत: अंग्रेजी बाल रखते हैं, अंग्रेजी फैशन के कपड़े पहनते हैं, अंग्रेजी ढंग का आहार चाय, बिस्कुट, सोडा, शराब, सिगरेट व्यवहार करते हैं, टूटी-फूटी अंग्रेजी में ही बात करते हैं। जिस इच्छा से भ्रमवश इस प्रयत्न को वे करते हैं, फल उससे बिल्कुल उल्टा होता है। कारण यह कि इस देश की गरम आवहवा में यूरोप के शीत प्रधान देशों की चाल ढाल बिल्कुल मौजूँ नहीं वरन उलटी हानिकारक है, इससे उनके स्वास्थ्य पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। दूसरी बात यह है कि अनुपयुक्त और बुरे उद्देश्य से की हुई नकल सदा उपाहासास्पद होती है। कहानी है कि—एक कौआ मोर के पंख लगाकर मोर बनने लगा, इस पर मोर और कौऐ दोनों उस पर क्रुद्ध हो गए और दोनों ने उसे बहिष्कृत कर दिया। राजनैतिक कारणों से वाह्यत: कोई शासक यह भले ही पसंद करे कि हिंदुस्तानी लोग अंग्रेजी जामे में कसें फिरें, पर मन ही मन वे भी उनकी कायर वृत्ति पर तिरस्कार करते होंगे। वे सोचते होंगे, यह लोग हमारी खुशामद के लिए ऐसे कपड़े पहनते हैं अन्यथा यदि इन्हें हमारे सद्गुणों की नकल करनी थी तो यह नकल करते कि हम लोग यूरोप के ठंडे देश की पोशाक इस देश में अनुपयुक्त होते हुए भी अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए पहनते हैं और जो थोड़ी कठिनाई पड़ती है, उसे भी सहन करते हैं। इसी प्रकार भारतीय लोग अपनी उस पोशाक को न छोड़ें, जो उनके लिए सर्वथा उपयुक्त है और संस्कृति का चिन्ह भी है। समझदार भारतीय भी उनके इस मोर बनने के प्रयास पर हँसते हैं। इतनी खरचीली, हानिकर फैशन बनाकर 'काले साहब' बनने का प्रयत्न उपहासास्पद ही तो समझा जाता है।

आप इन निरर्थक उपहासास्पद प्रयत्नों को छोड़कर आत्मसम्मान के मार्ग पर बढ़िए। अपनी वेश-भूषा में सम्मान अनुभव करिए। सादगी, किफायतसारी और संस्कृति-रक्षा जब तीनों ही बातें अपनी स्वदेशी वेशभूषा में प्राप्त होती हैं तो फिर ऐसा पहनावा क्यों पहनें, जो हानिकर भी है और आत्मसम्मान की दृष्टि से अनावश्यक भी।

आप धोती, कुर्ता पहन लीजिए। यह भारतीय पोशाक है, सादगी से भरी हुई है और अपने मन के भावों से परिपूर्ण है। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के मंत्र से दोनों ही भावों की रक्षा स्वदेशी पोशाक पहनने से होती है। चापलूसी करने, नकलची बनने या आत्म-समर्पण करने का भाव इसमें नहीं है, वरन आत्मगौरव और देश भक्ति का पुट है। समता, नम्रता, गंभीरता, दूरदर्शिता और विचारशीलता को यह प्रकट करती है। स्वदेश-बंधुओं के हाथ का कता-बुना कपड़ा, स्वदेशी ढंग से जब आप पहनते हैं तो इससे आत्मसम्मान के महत्त्वपूर्ण अंश की पूर्ति होती है। इस मार्ग पर कदम बढ़ाते हुए आप अपनी निजी भेषभूषा को ग्रहण कर लीजिए। वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ जहाँ तक संभव हो अपने देश की बनी हुई प्रयोग किया कीजिए तथा अपने प्रिय परिचित जनों को भी ऐसी ही प्रेरणा किया कीजिए। इससे आपके आध्यात्मिक भावों में वृद्धि होगी, आत्मसम्मान का पथ प्रशस्त होगा।

किसी ढाँचे में अपने को ढालने के लिए आस-पास का वातावरण भी वैसा ही बनाना पड़ता है। परिस्थितियों का अप्रत्यक्ष रूप से विशेष प्रभाव पड़ता है। कई व्यक्ति अच्छे विचार तो रखते हैं, पर आस-पासकी बुरी परिस्थितियों को नही बदलते। फलत: ऐसे अवसर आ जाते है, जबकि उनके कार्य भी बुरे ही होने लगते हैं। अतएव अपने दैनिक कार्यक्रम में से उन बातों को चुन-चुनकर निकाल देना चाहिए जिनके कारण अवांछनीय परिणाम उत्पन्न होने की आशंका हो। इस संशोधन में जितनी सूक्ष्म वृद्धि से काम लेंगे, उतनी ही अधिक सफलता होगी। छोटे-छोटे रोड़े जो नित्य के अभ्यास में आ जाने के कारण कुछ बहुत बुरे नहीं मालूम पड़ते, किसी दिन दुखदायी घटना उपस्थित कर सकते हैं, इसलिए उन्हें पहनने और हटाने में ढील न करनी चाहिए। रेल की पटरी पर रखा हुआ एक छोटा सा पत्थर का टुकड़ा, समूची रेल को उलट देने का कारण हो सकता है, इसी प्रकार छोटे-छोटे अनुचित प्रसंग किसी दिन आत्मसम्मान के लिए घोर घातक प्रमाणित हो सकते हैं।

मजाक के तौर पर बहुत से आदमी अश्लील शब्दों का उच्चारण करते हैं। ऐसा वे कौतूहल के लिए हलके तौर पर करते हैं, कोई

विशेष स्वार्थ उनका नहीं होता पर कौतूहल ही कौतूहल में कुवचन बोलने की आदत पड़ जाती है और वह आदत किसी अपरिचित व्यक्ति के सामने अनायास ही प्रकट हो तो वह अपने मन में बहुत शीघ्र यह विश्वास जमा लेगा कि यह टुच्चा आदमी है। बेहूदे तरीक से बात करना, अकारण बेतरह दांत फाड़ना, विचित्र भाव भंगी बनाते रहना, निकृष्ट प्रसंगों को वार्तालाप का विषय बनाना, इस तरह के काम यद्यपि पापयुक्त होते हुए भी दूसरों पर यह प्रकट करते हैं कि यह आदमी हलके मिजाज का, उथला, असंस्कृत, गँवार या लुच्चा है। लोगों का इस तरह का स्वभाव अपने बारे में अकारण बने, यह कोई अच्छी बात नहीं है। आपकी मुख-मुद्रा गंभीर रहनी चाहिए। हँसना, मुस्कराना, प्रसन्न रहना एक कला है, यह एक आवश्यक गुण है, इस प्रकार बरता जाना चाहिए कि दुर्गुण न बन जाए। प्रसन्न रहने की आदत के साथ गंभीरता, सौम्यता, तेजस्विता भी रहनी चाहिए। मुख-मुद्रा में गौरव और बड़प्पन की रेखाएँ भी नियोजित होनी चाहिए।

गठिया की बीमारी का इलाज करते समय कुछ दवाएँ खाई जाती हैं, कुछ तेल आदि दरद की जगह पर लगाए जाते हैं। दोनों ओर से जड़ काटने पर बीमारी जल्दी अच्छी होती है। भीतरी अंत:करण में सद्‌गुणों को भरते जाइए और बाहरी वेष-भूषा, मुखमुद्रा, कार्यशैली तथा आदतों को उसी ढाँचे में ढालते जाइए। यह ठीक है कि सद्‌गुणों के साथ बाहरी रूप-रेखा बदल जाती है, पर यह भी ठीक है कि बाहरी वेश निर्माण से स्वभाव पर असाधारण प्रभाव पड़ता है। दवा खाने से बीमारी की जड़ कटती है, पर दरद की जगह पर सेक, मालिस, लेप करना भी अकारथ नहीं जाता। भीतरी उपाय की भांति वाह्य उपचार भी अपना महत्त्व रखता है, उस महत्त्वपूर्ण बात को हमें उपेक्षा में नहीं डाल देना चाहिए।

आपके आस-पास की वस्तुएँ ऐसी होनी चाहिए जो आपके सद्‌गुणों का गौरव प्रकट करती हों। अपने शरीर को स्वच्छ रखिए, किन्हीं छिद्रों में गंदगी न जमनी चाहिए, जिससे बदबू उड़े और उड़कर दूसरों के कान में अपनी कुरुचि की, गंदेपन की चुगली कर आवे। वस्त्रों को स्वच्छ रखिए, उन पर न तो मैल जमा होने

दीजिए न धब्बे पड़ने दीजिए। वस्त्र यद्यपि बेजवान हैं तो भी उनके हर धागे से एक वाणी निकलती है। स्वच्छ कपड़ा अपने पहनने वालों की कोटि-कोटि केंद्रों में प्रशंसा करता है, उसकी सुरुचि का बखान करता है। आप कपड़े की इज्जत रखिए, कपड़ा आपकी इज्जत रखेगा। अधिक कीमती, मँहगा, विलायती, चमक-दमक का कपड़ा पहनने में कोई बड़प्पन नहीं है। बड़प्पन है उसे स्वच्छ और निर्मल रखने में, तरतीव से यथाक्रम पहनने में। सस्ता मोटा कपड़ा हो तो कुछ हरज नहीं, फट जाने पर सीं लिया गया हो तो भी कुछ हरज नहीं, बल्कि यह किफायतशारी और बुद्धिमानी का चिन्ह है। हरज लापरवाही में है, भोजन करते वक्त दाल की बूँदें कुरते पर गिर पड़ें और पीला धब्बा चमकता रहे यह बुरी बात है। रूमाल पर मुँह पोंछते वक्तपान का धब्बा लग जाए और वह लाल-लाल दीखे यह बुरी बात है। धोती की आधी पूँछ लटकती फिरे, कुरते के दो बटन टूटे हुए हों, सिलाई उधड़ गई हो, सलवटें और ऐंठन पड़ रही हो, लापरवाही से पहना गया हो तो वह कपड़ा चाहे बहुमूल्य ही क्यों न हो आपकी सुस्ती, काहिली, लापरवाही की चुगली करता फिरेगा। कहते हैं कि घर का भेदी लंका ढा देता है, हो सकता है कि शरीर के साथ रहने वाला भेदी और भी कोई अनर्थ उपस्थित करदे।

छोटी बातों की उपेक्षा मत कीजिए, क्योंकि छोटी-छोटी वस्तुएँ मिलकर ही बड़ी वस्तु का निर्माण करती हैं। दूसरे लोगों को इतनी फुरसत नहीं है कि वह तुम्हारे गुणों को जानें, परीक्षा करें और तब कुछ धारणा बनावें। आमतौर पर बाहरी रूप-रेखा से, छोटी-छोटी आदतों से, मुखमुद्रा से, पहनाव उड़ाव और बातचीत के ढंग से उसके चरित्र, गुण और व्यक्तित्व की परख की जाती है। व्यावहारिक सावधानी में कुशल व्यक्ति साधारण सद्गुण वाला होते हुए भी विशेष सफल रहता है, जबकि बड़े-बड़े प्रामाणिक व्यक्ति वाह्य रूपरेखा की लापरवाही के कारण असफल हो जाते हैं। एक प्रामाणिक व्यक्ति व्यापार के संबंध में बाहर जाता है, उसकी चाल-ढाल, वेश-भूषा अस्त-व्यस्त, लापरवाही की है। जिस दुकानदार से वह माल के संबंध में वार्तालाप करता है, उस पर सबसे पहला प्रभाव उसके बेतरतीव कपड़ों का, अस्त-व्यस्त चाल-ढाल का पड़ता है।

दुकानदार सोचता है यह लापरवाह, अव्यावहारिक और अदूरदर्शी व्यक्ति है, इसकी कार्य-व्यवस्था तथा वस्तुओं की श्रेष्ठता भी ऐसी ही होगी। यह सोचकर वह दुकानदार या तो उस व्यापारी से व्यापार नहीं करता या करता है, तो परीक्षा के लिए बहुत थोड़ा। जब तक परीक्षा करके सचाई पर विश्वास करने का अवसर आता है, तब तक कोई दूसरा व्यापारी उस दुकानदार को प्रभावित करके बड़ी तादाद में अपना माल दे देता है। पहला व्यापारी असफल रहा, इसका कारण सच्चाई या प्रामाणिकता में कमी होना नहीं है, वरन यह है कि वह प्रामाणिकता की कला में निपट अनाड़ी था।

निर्गुण ब्रह्म के साथ वह त्रिगुणमयी माया भी है, शेषशायी विष्णु के साथ लक्ष्मी शोभ बढ़ा रही हैं, अवधूत शंकर के साथ देवकन्या पार्वती का संबंध है। सत्य के साथ कला की भी आवश्यकता है। जो उस कला से अपरिचित हैं वे चाहे व्यापारी, श्रमी, बुद्धिजीवी, नेता, वक्ता, कोई भी क्यों न हों, केवल सत्य के आधार पर उतनी मात्रा में सफल नहीं हो सकते, जितने सत्य के साथ कला का भी समन्वय करके हो सकते हैं। एक और एक जब मिल जाते हैं, तो उसकी शक्ति ग्यारह के बराबर हो जाती है। सत्य को प्रकट करने की कला को भी जब मनुष्य जान जाता है तो उद्देश्य की सफलता बहुत ही आसान हो जाती है।

अपने घर को, वस्त्रों को, शरीर को स्वच्छ रखा कीजिए, वस्तुओं को इस तरह तरकीब के साथ सुसज्जित रखिए कि वे सुंदर प्रतीत हों साथ ही आपकी आंतरिक सुंदरता को प्रकट करें। अपनी हर कृति में उस पद्धति को समन्वित होने दीजिए, जिसके द्वारा आत्मसम्मान की वृद्धि होती हो। स्वच्छ, स्वदेशी, भारतीय वेष-भूषा के वस्त्र, मल रहित छिद्रों का दुर्गंध रहित शरीर, गंभीर, विवेकयुक्त, प्रामाणिक मुखमुद्रा, यह तीनों ही बातें आत्मगौरव की वृद्धि करती हैं। आपके कमरे में अर्द्धनग्न स्त्रियों के नहीं वरन लोक-सेवी महापुरुषों के चित्र होने चाहिए। आपकी अलमारी में बाजारू, अश्लील, पथभ्रष्ट पुस्तकें नहीं वरन ज्ञानवृद्धि करने वाला, चरित्र निर्माण करने वाला साहित्य रहना चाहिए। आपका बैठना-उठना निकृष्ट मुहल्लों में निंदनीय लोगों के साथ नहीं वरन प्रतिष्ठित

व्यक्तियों के साथ होना चाहिए। किसी से वार्तालाप आरंभ करें तो उसमें उच्चता का, आदर्शवाद का पुट रहना चाहिए। नम्रता, विनय, शिष्टाचार और सद्व्यवहार को अपनी प्रधान नीति रखें, पर अन्याय और अत्याचार का विरोध करने के लिए एक वीर योद्धा की तरह सदैव प्रस्तुत रहें। बार-बार अपने कार्यों तथा विचारों पर दृष्टि डालकर यह निरीक्षण करते रहें कि आत्मसम्मान के गिराने वाले तत्त्व अभी कितने अंशों में बाकी हैं और उनका निवारण शीघ्र से शीघ्र किस प्रकार किया जा सकता है?

साइन बोर्ड के आधार पर अपरिचित व्यक्ति यह जानता है कि मकान के अंदर कौन रहता है या क्या कारोबार होता है। मुखमुद्रा एक प्रकार का साइन बोर्ड है, जिससे प्रकट होता है कि इस देह के अंदर रहने वाला कैसा है, किस प्रकार के गुण अवगुण उसमें हैं? आप में अनेक अच्छे गुण हैं तो भी यदि स्वभाव परिमार्जित न हुआ, भावभंगी में मुखमुद्रा का गौरव प्रकट करने योग्य लहरें न हुईं तो नित्य जिन अपरिचित अनेक व्यक्तियों के साथ व्यवहार करते हैं, उन पर कोई अच्छा प्रभाव न डाल सकेंगे। मकान के दरवाजे पर साइनबोर्ड कुछ लगा हो और भीतर काम कुछ होता है तो खास-खास परिचित व्यक्तियों को छोड़कर साधारणतः यही समझा जाएगा कि इस मकान में वही काम होता है, जिसका साइनबोर्ड लगा है। मदिरा का लेबल लगी हुई बोतल में यदि गंगाजल भरा हो तो आमतौर से उसे मदिरा ही समझा जायेगा। छानबीन करके बोतलों में भरी हुई वस्तु को जानने की सुविधा और रुचि बहुत कम लोगों को होती है। साधारणतः उसी पर पूरा-अधूरा विश्वास किया जाता है। आप में जब अनेक सद्गुणों का निवास है, ईमानदारी, भलमनसाहत, सभ्यता, शिष्टाचार, वीरत्व जैसी उत्तम वृत्तियों को अपने में लगातार भरते चले जा रहे हैं तो यह भी आवश्यक है कि वैसी ही मुख-मुद्रा का, भ्रकुटि विलास का निर्माण करें। जब आप मणि-मुक्ताओं का व्यवहार करते हैं तो क्या हरज है यदि 'जौहरी की दुकान' का साइनबोर्ड भी अपने कार्यालय के दरवाजे पर लगा दें। इससे आपको भी लाभ होगा और पहचानने वाले को भी आपके बारे में जानकारी प्राप्त करने के संबंध में इससे आसानी होगी।

आत्मसम्मान को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करते रहिए, क्योंकि यह बहुमूल्य संपत्ति है। पैसे की तरह यह आँख से दिखाई नहीं पड़ता और पास रखने के लिए तिजोरी की जरूरत नहीं पड़ती तो भी स्पष्टत: यह धन है। हम ऐसे व्यापरियों को जानते हैं, जिनके पास अपनी एक पाई न होने पर भी दूसरों से उधार लेकर बड़े-बड़े लंबे-चौड़े व्यापार कर डालते हैं, क्योंकि उनका बाजार में सम्मान है, ईमानदारी की प्रतिष्ठा है। हम ऐसे नौकरों को जानते हैं, जिन्हें मालिक अपने सगे बेटे की तरह प्यारा रखते हैं और उनके लिए प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से इतना पैसा खरच कर देते हैं, जो उनके निर्धारित वेतन से अनेक गुना होता है। कारण यह है कि नौकर के सद्गुणों के कारण मालिक के मन में उसका सम्मान घर कर लेता है। गुरुओं के वचन को मानकर श्रद्धालु शिष्य अपना सर्वस्व देने के लिए तत्पर हो जाते हैं, अपनी जीवन दिशा बदल देते हैं, प्यारी वस्तु का त्याग कर देते हैं, राजमहल छोड़कर भिखारी बन जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि शिष्य के मन में गुरु के प्रति अगाध सम्मान होता है, गुरु का आत्मसम्मान शिष्य को अपना वशवर्ती बना लेता है। अदालत में किसी एक की गवाही विपक्षी सौ गवाहों की बात को रद्द कर देती है, कारण यह है कि उस गवाह की प्रतिष्ठा न्यायाधीश को प्रभावित कर देती है। आत्मसम्मान ऊँची कोटि का धन है, जिसके द्वारा ऐसे महत्त्वपूर्ण लाभ हो सकते हैं, जो कितना ही पैसा खरच होने पर हो सकते थे। पैसे के द्वारा लोगों के शरीर और इच्छित भोग-पदार्थ खरीद सकता है, पर प्रतिष्ठा वाला असंख्य हृदयों पर बेपैसे का शासन करता है और वह शासन इतना अटूट एवं शक्तिशाली होता है कि उसके द्वारा वे वस्तुएँ बिना माँगे मिल जाती हैं, जिनको खरीदने के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता होती है।

आत्मसम्मान धन है। बाजार में वह पूँजी की तरह निश्चित फल देने वाला है, समाज में पूजा कराने वाला है, आत्मा को पौष्टिक भोजन देने वाला है, इसलिए हम कहते हैं कि-हे अध्यात्मवाद का आश्रय लेने वाले शूरवीर साधको! आत्मसम्मान संपादित करो और प्रयत्न पूर्वक उसकी रक्षा करो।

दुष्टों से प्रेम, दुष्टता से युद्ध

एक तत्त्वज्ञानी का उपदेश है कि 'दुष्टों पर दया करो, किंतु दुष्टता से लड़ो मरो'। दुष्ट और दुष्टता का अंतर किए बिना हम न्याय नहीं कर सकते हैं। अक्सर यही होता है कि लोग दुष्टता और दुष्ट को एक ही वस्तु समझ लेते हैं और एक ही ढेले से दोनों को शिकार बना देते हैं।

बीमार और बीमारी एक ही वस्तु नहीं है। जो डॉक्टर बीमारी के साथ बीमार को भी मार डालने का इलाज करता है, उसकी बुद्धि को क्या कहें ? एक बंदर अपने मालिक को बहुत प्यार करता था, जब मालिक सो जाता था तो बंदर पंखा किया करता था ताकि मक्खियां उसे न सतावें। जब तक वह पंखा झलता रहता, मक्खियाँ उड़ती रहतीं, जैसे ही वह पंखा बंद करता कि मक्खियाँ फिर मालिक के ऊपर आकर बैठ जातीं। यह देखकर बंदर को मक्खियों पर बड़ा क्रोध आया और उसने सजा देने का निश्चय किया। वह दौड़ा हुआ गया और खूँटी पर टंगी हुई तलवार को उतार लाया। जैसे ही मक्खियाँ मालिक के मुँह पर बैठीं, वैसे ही बंदर ने खींचकर तलवार का एक हाथ मारा। मक्खियाँ तो उड़ गईं पर मालिक का मुँह बुरी तरह जख्मी हो गया। हम लोग दुष्टता को हटाने के लिए ऐसा ही उपाय करते हैं, जैसा बंदर ने मक्खियों को हटाने के लिए किया था।

आत्मा किसी का दुष्ट नहीं है, वह तो सत्य, शिव और सुंदर है, सच्चिदानंद स्वरूप है। दुष्टता तो अज्ञान के कारण उत्पन्न होती है, यह अज्ञान एक प्रकार की बीमारी ही तो है। अज्ञान रूपी बीमारी को मिटाने के लिए हर उपाय काम में लाना चाहिए, परंतु किसी से व्यक्तिगत द्वेष न मानना चाहिए। व्यक्तिगत द्वेष भाव जब मन में घर कर लेता है, तो हमारी निरीक्षण बुद्धि कुंठित हो जाती है। वह नहीं पहचान सकती कि शत्रु में क्या बुराई और क्या अच्छाई है। पीला चश्मा पहन लेने पर सभी वस्तुएँ पीली दिखाई पड़ने लगती हैं। इसी प्रकार स्वार्थपूर्ण द्वेष जिस मनुष्य के प्रति घर कर लेता है, उसके भले काम भी बुरे प्रतीत होते हैं और अपनी आँखों के पीलिया रोग को न समझकर

दूसरे के चेहरे पर पीलापन दिखाई पड़ता है, उसे पांडुरोग समझकर उनका इलाज करने लगता है। इस प्रकार अपनी मूर्खता का दंड दूसरों पर लादता है, अपनी बीमारी की दवा दूसरों को खिलाता है। जालिम और दुष्ट, क्रोधी और पर पीड़क, इसी अज्ञान से ग्रसित होते हैं। उनके मन में स्वार्थ एवं द्वेष समाया हुआ होता है, फलस्वरूप उन्हें दूसरों में बुराइयाँ ही बुराइयाँ नजर आती हैं। सन्निपात का रोगी दुनियाँ को ग्रसित समझता है।

आप दुष्टता और दुष्ट के बीच अंतर करना सीखिए। हर व्यक्ति को अपनी ही तरह पवित्र आत्मा समझिए और उससे आंतरिक प्रेम कीजिए। कोई भी प्राणी नीच, पतित या पापी नहीं है, तत्त्वतः वह पवित्र ही है। भ्रम, अज्ञान, और बीमारी के कारण वह कुछ का कुछ समझने लगता है। इस बुद्धिभ्रम का ही इलाज करना है। बीमारी को मारना है और बीमार को बचाना है। इसलिए दुष्ट और दुष्टता के बीच में फर्क करना सीखना चाहिए। मनुष्यों से द्वेष मत रखिए, चाहे उनमें कितनी ही बुराइयाँ क्यों न हों। आप तो दुष्टता से लड़ने को तैयार रहिए, फिर वह चाहे दूसरों में हो, चाहे अपनों में हो या चाहे खुद अपने अंदर हो।

पाप एक प्रकार का अँधेरा है, जो प्रकाश होते ही मिट सकता है। पाप को मिटाने के लिए कड़ुए से कड़ुआ प्रयत्न करना पड़े तो आप प्रसन्नतापूर्वक कीजिए, क्योंकि वह एक ईमानदार डॉक्टर की तरह विवेकपूर्ण इलाज होगा। इस इलाज में लोक कल्याण के लिए मृत्युदंड तक की गुंजायश है। किंतु द्वेषभाव से किसी को बुरा समझ जाना या उसकी भलाइयों को भी बुराई कहना अनुचित है। जैसे एक विचारवान डॉक्टर रोगी की सच्चे हृदय से मंगल कामना करता है और निरोग बनने के लिए स्वयं कष्ट सहता हुआ जी तोड़कर परिश्रम करता है, वैसे ही आप पापी व्यक्तियों को निष्पाप करने के लिए साम, दाम, दंड, भेद चारों उपायों का प्रयोग कीजिए, पर उन पापियों से किसी प्रकार का निजी राग-द्वेष मत रखिए।

❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।